विषय-सूची

प्रह्लाद

(त्रैमासिक हिंदी-पत्रिका)

वर्ष १६८३ (अक्तूबर से दिसम्बर तक) अंक ३

वेदामृत

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सुनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पंक्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥

साम०/पूर्वार्चिक/१/६/१२

(अर्थ—परमात्मा हमको प्राप्त हो। वेद की सत्यवाणी भली प्रकार प्राप्त हो। फैलने वाले, मनुष्यो के हितकारक, पाच पुरुषो मे सेवित यज्ञ को अग्नि वायु आदि देवता ले जावें।)

शन्नो देवीरभिष्टये शन्नो भवन्तु पीतये।
शयोरभि स्रवन्तु नः ॥

साम०/पूर्वार्चिक/१/३/१३

(अर्थ—परमात्मा की दिव्य शक्तियाँ हमारे मनोवाछित आनन्द के लिए सुखदायिनी होवे, हमारी तृप्ति के लिए सुखदायिनि होवे। हमारे लिए दिव्य सुख को वर्षाए।)

परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
दधद्रत्नानि दाशषे ॥

साम०/पूर्वार्चिक/१/३/१०

(अर्थ—अन्नपति अन्नदाता बुद्धिमान प्रकाशस्वरूप परमात्मा हम दानी पुरुषो के लिए ग्रहण के योग्य धनो को देता हुआ सर्वत्र व्याप्त रहा है।)

(यथार्थ मे परमात्मा ही सब का अन्नदाता है और अनन्तज्ञानवान् तथा प्रकाशवान् है। वह दानशीलो को अपनी व्यापकता से कर्मानुसार धनादि पदार्थ देता है।)

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः।
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ॥

साम०/पूर्वार्चित/१/६/५

(अर्थ—समस्त मरणधर्मी मनुष्य जिस अमर अग्नि मे होम करते है, वह बहुतो का प्यारा, इष्ट सिद्धिकारक, सदा गमनशील आत्माग्नि के रूप मे वर्णित किया जाये।)

स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य

ले० महात्मा मुंशीराम

स्वाध्याय का क्या अर्थ है ?

योग दर्शन मे महामुनि पतजलि क्रियायोग का लक्षण इस प्रकार करते है "तप स्वाध्येयेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोग ॥" योग० पा० 2 सू० ।" इस सूत्र का भाष्य करते हुए व्यासमुनि ने स्वाध्याय शब्द की इस प्रकार व्याख्या की है —

"स्वाध्याय प्रणवादि पवित्राणा जप मोक्षशास्त्राध्ययन वा ।"

शब्दरत्नावली कोष मे स्वाध्याय का निम्नलिखित लक्षण किया है —

"स्वाध्याय क्षय इत्युक्तो वेदाध्ययन कर्मणि ।"

प्रणव पुरुष सूक्त रुद्रमण्डल ब्राह्मण ब्रह्मपारायण इत्यादि का जप स्वाध्याय शब्द से लिया है। तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये क्रियाये योग का साधन होने से क्रिया योग कर के कही गई है। इन क्रियाओ के करने से समाधि लगने लगती है और क्लेश सूक्ष्म हो जाते है। इस मे जरा सोचने की बात है कि केवल जप मात्र करने से अर्थात् मुख से शब्द का उच्चारण मात्र करने से मन की शुद्धि नही हो सकती। और मन के ऊपर प्रभाव न पडेगा तो समाधि का लगना और क्लेशो का सूक्ष्म होना नही हो सकता। इसलिए जप शब्द से शब्द का उच्चारण पूर्वक अर्थ का चिन्तन भी समझना चाहिए। ऐसा ही "तज्जपस्तदर्थ भावनम्"। यो०पा० । ११ सू० १८—मे कहा है मुख्यत अर्थानुचिन्तन ही स्वाध्याय शब्द से लेना चाहिये, क्योकि यदि कोई मुख से उच्चारण न भी करे, परन्तु अर्थो पर विचार करे तो उसकी भी समाधि लगने लगेगी और क्लेश क्षीण होने लगेगे। इसलिये स्वाध्याय शब्द का अर्थ किसी गूढ तत्व पर विचार करना हुआ, क्योकि वेद शब्द से ज्ञान मात्र का ग्रहण होता है, क्योकि वेद को ब्रह्म कहते है।

स्वाध्याय और ब्रह्मचारी
किस तरह सम्बद्ध है।

और ब्रह्म का लक्षण "सत्यं ज्ञानमनन्तब्रह्म" किया है। ब्रह्म नाम आत्मा का है अत आत्मा को ज्ञान स्वरूप माना है। इस प्रकार स्वाध्याय शब्द का अधिक व्यापक अर्थ करे तो "अपने अध्ययन" का नाम स्वाध्याय होता है। "अपना अध्ययन" पूरी तरह से हो जाय इस ही लिये तो सारा प्रयत्न किया जाता है। योग दर्शन "अपना अध्ययन" कराने के लिये प्रवृत्त हुआ। जितने अन्य वेदादि शास्त्र है वे भी 'अपना अध्ययन" कराने के उद्देश्य से ही प्रवृत्त है। यूरप और अमेरिका के बडे-२ फिलौसफरो (तत्वान्वेषको) ने "अपना अध्ययन" करने को अर्थात् Reality of life के पता लगाने को अपने जीवन लगा दिये। अर्थात् स्वाध्याय शब्द का अर्थ "अपना अध्ययन" करना वा "आत्मा को पढना" अथवा नित्य नियत रूप से रहने वाला, 'ज्ञान प्राप्त" करना स्वाध्याय शब्द का अर्थ हुआ।

ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ है ?

श्री वाचस्पति मिश्र ने भामति के ब्रह्मजिज्ञासाधिकरण मे ब्रह्मचारी शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है —

"ब्रह्म वेदाथ व्रत तच्चरतीति ब्रह्मचारी"।
यू भी ब्रह्मचारी शब्द की व्युत्पत्ति कर सकते है—
"ब्रह्मणि वेदे चरति य स ब्रह्मचारी"।

अर्थात् ज्ञान मे अव्याहत गति से जो विचारता है वह ब्रह्मचारी कहाता है। अर्थात् जिसका सारा समय तत्वो के विचार मे ही बीत जाता है उसको ब्रह्मचारी कहते है। ब्रह्मचारी का जो कर्म हो उसको ब्रह्मचर्य कहते है। अर्थात् गूढ विचारो मे मग्न रहने को ब्रह्मचर्य कहते है।

स्वाध्याय शब्द की विवेचना करते हुए अन्त मे परिणाम निकाला था कि नित्य नियत रूप से विद्यमान जो सत्य ज्ञान है उसका प्राप्त करना स्वाध्याय है। और अब ब्रह्मचर्य शब्द की विवेचना से पता लगा कि उसी ज्ञान मे विचारने का नाम ब्रह्मचर्य है। बात क्या है कि ब्रह्मचारी और स्वाध्याय का इतना गहरा सम्बन्ध है कि ब्रह्मचारी और स्वाध्याय नही करता वह वस्तुत ब्रह्मचारी नही है। स्वाध्याय करना ही ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्य है। स्वाध्याय अगी है और ब्रह्मचर्य उसका अग है ऐसा भी कई कहते है। स्वाध्याय का सबसे पृथक काल ब्रह्मचर्याश्रम है। इसी समय पूर्ण स्वाध्याय को प्राप्त करने के लिए नीव रखी जाती है। जिन्होने इस समय को व्यर्थ

खोकर स्वाध्याय नही किया वे पूर्ण स्वाध्याय को तो प्राप्त हो ही नही सकते, परन्तु जीवन भर पछताते हैं और यथेष्ट सुख को न प्राप्त हो कर दु ख भोगते हैं। जो इस समय को स्वाध्याय मे लगाते है वे ही भविष्यत् जीवन मे शान्ति प्राप्त कर सकते है। पूर्ण स्वाध्याय करना और परमात्मदर्शन करना एक ही बात है। परमात्मा का दर्शन उस अवस्था मे होता है जब स्वाध्याय और योग की सम्पति हो जाती है। जैसा कि योग दर्शन के प्रथम पाद के २८वें सूत्र के भाष्य मे व्यास मुनि कहते है —

"स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत्। स्वाध्याय योगसम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।"

अर्थात् चित्त को एकाग्रता पूर्वक तात्विक विचारो की सम्पत्ति जब होती जाती है तो ज्ञान स्वरूप परमात्मा का प्रकाश होने लगता है, अर्थात् आप से आप हृदय मे ज्ञान का स्फुरण होने लगता है इसलिये ब्रह्मचर्याश्रम के काल को स्वाध्याय मे ही निरन्तर करना चाहिये।

पं० रामचन्द्र वैद्य शास्त्री अलीगढ निवासी ने "ब्रह्मचर्य और उसकी उपकारिता" पर एक निबन्ध षष्ठ वैद्य सम्मेलन मे पढा जिसमे वह ब्रह्मचर्य का अर्थ "वीर्य रक्षा पूर्वक विद्याध्ययन करते हैं"। इससे स्पष्ट है कि विद्याध्ययन वीर्यरक्षा के बिना नही हो सकता। तथा यह भी जानना चाहिए कि स्वाध्याय के बिना वीर्यरक्षा भी नही हो सकती। महाभारत-३/२४/१५, मे भिक्षु का विशेषण स्वाध्यायी आया है। भिक्षु अर्थात् सन्यासी होना ब्राह्मण ही का अधिकार है अन्य का नही ऐसा स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश मे निर्णय किया है। ब्राह्मण और सन्यासी का ही काम विद्या और प्रचार करना लिखा है। इस से ज्ञात होता है कि स्वाध्याय करना ब्राह्मण का मुख्य कर्तव्य है। बिना स्वाध्याय करते रहने से कोई ब्राह्मण ब्राह्मण नही कहा सकता। वहा लिखा है—

"ब्राह्मण- साग्निहोत्राच्च तथैव चनिरग्नय:। स्वाध्यायिनो भिक्षवच्च तथैव बनवासिन.।"

उर्ध्वरेता होने के लिए स्वाध्याय की बडी भारी आवश्यकता है। जो लोग उर्ध्वरेता हुए हैं उनका सारा समय स्वाध्याय मे ही बीतता था। स्वाध्याय न करने से ही विषयवासनाओ मे मन फस कर ब्रह्मचर्य से पतित होने को ले जाता है। जो स्वाध्याय मे निरत रहते हैं उन्हे किसी प्रकार के प्राकृत सौन्दर्य की आवश्यकता नही रहती वे दिव्यश्री को देने वाले वीर्य की रक्षा करने से और स्वाध्याय मे उसका

उपयोग करने से उस श्री को प्राप्त होते है जिसे स्वाध्याय न करने वाले नही होते । उन पुरुषों का वीर्य दिमाग मे सचित होकर और विचार मे उपयुक्त होकर उनको उर्ध्व रेता बनाता है तथा बल ओज श्री आदि पदार्थ उनको देता है। नित्य निरन्तर स्वाध्याय मे लगे हुए पुरुष उर्ध्वरेता होते हैं और मरणपर्यन्त सम्पूर्ण जीवन ब्रह्चर्य मे वास करते हैं उनको दारपरिग्रह की इच्छा भी नही होती। ऐसा ही महाभारत १/४०/१० मे कहा है —

"सतुर्ध्वरेतास्तपसि प्रसक्त स्वाध्यायवान् वीतभय कृतात्मा।
चचार सर्वा पृथिवी महात्मा न चापि दारान्मनसाप्यकाड्क्षत ॥"

स्वाध्याय से ब्राह्मण तनु मिलती है ऐसा मनु महाराज ने माना है
"स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्य या सुतै । महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियतेतनु ॥"

स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश मे ब्रह्मचारी को यम नियम का सेवन करना लिखा है। इस यम नियमो को देखने से प्रतीत होता है कि यम नियमो का क्रम से आपस मे सम्बन्ध है अर्थात परस्पर एक दूसरे के उपकार्य और उपकारक है।

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि नियमा । अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमा । इससे तो बिलकुल स्पष्ट सिद्ध है कि स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य (वीर्यरक्षा) मे किस कदर सम्बन्ध है। मनु महाराज अ०२ के १०५, १०६, १०७ श्लोको मे कहते है कि स्वाध्याय ब्रह्मयज्ञ है उसमे अनध्याय नही हो सकते । अन्य कामो मे जो ब्रह्म यज्ञ से बाहर है उनमे अनध्याय हो जाय तो हो जाय। जो पुरुष वर्ष भर नित्य नियत रूप से स्वाध्याय को करता है वह उन शक्तियो से सम्पन्न हो जाता है कि उस के पास दूध, दही, घी, मधु की वर्षा होने लगती है, यह स्वाध्याय ही का फल है।

"वेदोपकरणे चैव स्वाध्यायेचैवनैनित्यके नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेष चैवहि ॥"

"नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रहितस्मृतम् ।
ब्रह्माहुति हुत पुण्यमनध्यायवषट् कृतम् ॥"
"य स्वाध्यायमधोतेब्दं विधिनानि यत शुचि ।
तस्य नित्य क्षुरत्येष पयोदधि घृत मधु।"

मनु ने अ०२ के १६५–१६८ तक श्लोको मे बताया है कि जो द्विज स्वाध्याय अर्थात् तप नही करता वह द्विज नही पर शूद्र है।

"तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितै ।
वेद कृत्स्नोऽधिगन्तव्य. सरहस्यो द्विजगमना ।।"
"वेदमेवसदा भ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तम ।
वेदाभ्यासोहि विप्रस्य तप परमिहोच्यते ।।"
"आहैवसनखाग्रेभ्य परम तप्यतेतप ।
य: स्त्रग्व्यपि द्विजोऽधिते स्वाध्यायशक्तितोऽन्वहम् ।।"
"योऽनधीत्यद्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।।
सजीवन्नेवशूद्रत्वमाशुगच्छतिसान्वय ।।"

मनु जी ने अ० ३ श्लो ७५, ८१ मे कहा है कि स्वाध्याय और देव यज्ञ दोनो को जो नित्य प्रति करता है वह चराचर का पोषण करता है ये दोनो यज्ञ ही ब्रह्मचारी के लिए मुख्यतया विहित है। यदि ब्रह्मचारी ससार के प्रति कुछ उपकार करना चाहता है, यदि ससार के प्रति कुछ कृतज्ञता का भाव रखता है तो इन दोनो यज्ञो का परित्याग कभी न करे और स्वाध्याय मे ही निरन्तर सलग्न रहे। प्रत्येक मनुष्य पर तीन ऋण कहे जाते है उन मे से ऋषि ऋण का उतारना स्वाध्याय से ही माना है। ऋषियो की पूजा, अर्चन वा तर्पण वही कर सकता है, जो स्वाध्याय मे लगा रहता है, दूसरा नही। "स्वाध्याये नित्ययुक्त स्याद्दैवेचैवेहकर्मणि दैवेकर्मणियुक्तो हि बिभर्तीद चराचरम् ।।" "स्वाध्यायेनर्चयेतर्षीन्होमैर्देवान् यथाविधि। पितृन्श्राद्धैश्च न नन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ।।" मनुमहाराज अ० श्लो० १७

सर्वान् परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्यविरोधिना। यथा तथा ध्यापयस्तु साह्यस्य कृत-कृत्यता।" बताते है कि स्वाध्याय के विरोधी जितने काम है उन सब को छोड दे, अर्थात जिन व्यवहारो के करने से स्वाध्याय मे विघ्न पडता हो वे व्यवहार त्याज्य है। जिन व्यवहारो से जीविका प्राप्त होती है, दिन भर चैन रहती हो वे व्यवहार यदि स्वाध्याय मे बाधक है तो त्यज्य ही हैं। जीविका जाय पर स्वाध्याय न जाय। मनु महाराज समझते थे कि जिस पदार्थ को तुम प्राप्त करना चाहते हो वह स्वाध्याय से ही प्राप्त होगा अन्यथा भटकते और मारे फिरना पडेगा और कुछ प्राप्त न होगा। जो मनुष्य ससार मे स्वाध्याय न करके अपने कर्तव्याकर्तव्य को न विचार कर, अपने जीवन के उन्नति और अवनति के अशो पर ध्यान देकर, जीवन के उत्तम बनाने वाले, पथको ध्यान मे न रखकर, ये अच्छा, वह खराब, फलाना ऐसा, उसे यू करना चाहिए, यू नही, दूसरे व्यक्तियो की आकृतिया, चेष्टायें देखते रहते हैं वे स्वाध्याय नही कर

सकते वे मनुष्य आलसी, तमोगुणी, स्वार्थ परायण अर्थात् प्रत्येक काम को तक करता या हाथ मे लेना जबकि उनका अपना उससे कुछ सिद्ध होता हो नही तो नही, वे लोग कपडे लत्ते, खाने पीने की रहना सहने की बाते करते रहेगे और कभी उन्हे सन्तोष नही होगा, उनकी बातो के सुनने से सर्वदा उनका असन्तोष ही प्रकट होगा। ये लोग सयमी न होगे, पुरुषार्थी न होगे सर्वदा दूसरो से किसी न किसी प्रकार से बदला लेने की सोचते रहेगे दूसरो की उन्नति को देख कर इनके दिलो मे ईर्ष्या जलन होगी और अभिमान मे भर कर आगे पीछे निन्दा करने मे तत्पर रहेगे। असहनशील होगे, दूसरो के कथन को सहन न कर सकेगे सदर्भ प्रचारक पौष २५ सवत १८७२ (पृ० १०-१२ से सभार) ये अविचारशीलता के कारण शीघ्र ही क्रोधान्ध हो जाएगे। ऐसे २ कार्य करते करते इनमे निर्लज्जता आ गई होगी। अपना स्वार्थ साधने के लिये जो कुछ भी करना पडे करने को तैय्यार होगे। इनके अन्दर प्रेम का भाव बहुत ही न्यून होगा, दूसरो के प्रति घृणा बहुत होगी। ऐसे लोग शूद्रो से भी गिरे हुए होते है क्योकि स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश मे उत्तम शूद्र वह लिखा है जिसे पढना लिखना कुछ न आता हो और निन्दा ईर्षा अभिमान को छोड कर द्विजो की सेवा करता हो। इन लोगो मे ये गुण भी नही होते तो किसी अच्छे शूद्र मे होने चाहिए। इन दोषो के होते हुए ये लोग कभी भी ब्रह्मचारी नही रह सकते और ब्रह्मचर्य पूर्वक स्वाध्याय करना तो इनके लिये असम्भव सी बात है। धर्म पूर्वक चलने वाले लोगो की प्रतिष्ठा देख कर यदि उनके मन मे भी कभी उसी प्रकार कार्य करने को आवे और कोई रास्ता ढूढना चाहे तो उन्हे यही करना चाहिए कि पहले इन दोषो को छोडे फिर स्वय ही सफलता होगी।

ब्रह्मचर्याश्रम को धारण किये मनुष्य का प्रथम कर्तव्य यह है कि वह उत्तम शूद्रवत् बनने की कोशिश करे, अर्थात् निन्दा ईर्षा अभिमान को सर्वथा त्याग करके अपने बडो की आचार्य अध्यापक अधिष्ठाता तथा अन्य पूज्य मनुष्यो की भक्ति पूर्वक सेवा करे जिस से उसकी आयु विद्या यश और बल बढे।

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य पूर्वक स्वाध्याय करता हुआ अपनी प्रथम आयु (ब्रह्मचर्य-काल) को समाप्त करता है वह उत्तम शूद्रवत् होने के पश्चात् अन्यवर्ण और अन्य आश्रमो को भी ग्रहण करने मे समर्थ होता है। अन्यथा ग्रहण करने से तो कष्ट मे ही पडा रहता है जैसे भार लदे गधे को कष्ट मालूम होता है। ऐसे उसे भी कष्ट भोगना पडता है, और वह मनुष्य ससार मे पाप बढाता है। मनु ने जैसे स्वाध्याय को तप कहा था ऐसे ही अ० ॥ श्लो० २४४

"ब्रह्मचर्य जपो होम कालेशुद्धाल्प भोजनम्।
अरागद्वेषलोमाच्च तप उक्त स्वय भुवा ॥"

इसमे ब्रह्मचर्य को तप बताया है।

वेदाभ्यास अर्थात् स्वाध्याय करने से ज्ञानाग्नि मे भस्म हो जाते है। ऐसा मनु ने अ० ॥ श्लो० २४५, २४६ मे कहा है।

वेदाभ्यासोन्वह शक्त्या महायज्ञ क्रियाक्षमा। नाशयन्त्याशु पापानि महापातक-जान्यपि ॥"

"यथैधस्तेजना वन्हि प्राप्तनिर्दहतिक्षणात्। तथा ज्ञानाग्निना पाप सर्व दहति वेदवित्।"

प्रतिदिन अग्नि से प्रार्थना की जाती है—

"ब्रह्मवर्चस्व्यन्नादो भूयासम्" कि मैं ब्रह्मवर्चस् वाला होऊ अर्थात् जिस प्रकार वेद या ज्ञानमय परमात्मा के नियम इस संसार मे दीप्त हैं इसी प्रकार मे भी ज्ञानमय होकर दीप्त होऊ। वे ज्ञानमय परमात्मा के नियम आप ही आप नही आते परन्तु प्राकृतिक वस्तुओ को निरीक्षण परीक्षण करके उन पर विचार करने से अथवा सारे को मिला कर कहा जाय तो स्वाध्याय से आते हैं।

जो ईश्वर पर प्रेम रखता है अर्थात् उसे ज्ञानमय पूर्ण सब का नियन्ता समझता है और ज्ञान प्राप्त करते २ वैसा बनने का स्वय प्रयत्न करता है वह ज्ञान को प्राप्त कर सकता है अर्थात् स्वाध्याय कर सकता है, इसीलिये प्रथम २ बच्चे की जीभ पर ओम् लिख कर उसके कान मे वेदोसि कहा जाता है। ईश्वर मे प्रेम ही ज्ञान का मूल है, इस प्रकार भक्तिभाव से ही मनुष्य विचारशील बनता है, विचारशील होने से ही धर्मिष्ठ होता है, धर्मिष्ठ होने से ही आरोग होता है। ब्रह्मचर्य का पालन ही मनुष्य का धर्मिष्ठ होना है। क्योकि ब्रह्मचर्य को आरोग्य का मूल बतलाया है —

"धर्तार्थ काम मोक्षणामारोग्य मुलमुत्तम्।"

अग्निवेष महर्षि ने लिखा —

"शुक्र तस्माद्विशेषेण रक्ष्यमारोग्यमिच्छता।"

जो मनुष्य ब्रह्चर्य का पालन नही करते वे बलहीन बुद्धि हो जाते हैं स्वाध्याय करने मे समर्थ नही करते। और निराश हो जाते हैं उनको निराश न होना चाहिए। निराषता से अधिक २ गिरावट ही होती है, लाभ नही होता। वेदारम्भ के समय आचार्य शिष्य को उपदेश दिया करता है —

ऋतं च स्वध्याय प्रवेचने च ते० (प्रपा० ७, अनु० ६)

सत्य च	,,	,,
तपश्च	,,	,,
दमश्च	,,	,,
शमश्च	,,	,,
अग्नयश्च	,,	,,
अग्निहोत्र च	,,	,,

इस मे स्वाध्याय पर कितना बल दिया है। स्वाध्याय ही ब्रह्मचर्य का मूल है।

स्वाध्याय का प्रत्येक आश्रम से सम्बन्ध

ब्रह्मचर्याश्रम से स्वाध्याय का कितना सम्बन्ध है यह तो दिखाया ही है क्योंकि वेदारम्भ के समय आचार्य जो उपदेश देता है उसी से सिद्ध है, क्योंकि उस मे स्वाध्याय कभी न छोडना यह सीधा ही उपदेश दिया है। परन्तु गृहस्थाश्रम मे भी स्वाध्यायी रहने की आवश्यकता है। क्योंकि वहा भी ब्रह्मचर्य से रहना होता है। स्वाध्याय से अर्थात् दिन भर किसी न किसी विचार मे अपना मन रखने से वीर्य की खपत विचार मे ही होती रहती है और विषय वासना न उपजने से वीर्य की रक्षा से वह वीर्य पुन शरीर की अन्य धातुओ मे परिणत होने से शरीर को पुष्ट करता है। जो लोग गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करके एक प्रकार के बन्धन से मुक्त होना समझते हैं वे वहा पहुँच कर पतित हो जाते है और निर्बल हो कर निर्बल ही सन्तान को उत्पन्न करके ससार का अपकार करते हैं। वहा भी ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन व्यतीत करना बुद्धिमानो ने कहा है —

"द्विविधं ब्रह्मचर्यमुख्यं गौण चेति तत्र प्रथममकृतदारसग्रह द्वितीयमेकदा-रश्चेति प्रमाणमत्रमनु:—

"निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्। ब्रह्मचारी व भवति यत्रतत्राश्रमे वसन्॥

जिस समय आचार्य शिष्य के प्रति वेद का व्याख्यान कर चुकता है तो ब्रह्मचर्याश्रम के बाद उसको इस प्रकार अनुशासन करता है :—

"वेदमनूच्य आचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्य वद। धर्म चर। स्वाध्यायान्मा-प्रमद। इत्यादि॥" तै० प्रपा० 7 अनु० ॥, क० १,२,३,४

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि स्वाध्याय गृहस्थाश्र मे भी नही छूटता।

वानप्रस्थाश्रम मे प्रवेश करके भी मनुष्य को मनु महाराज इस प्रकार उपदेश देते हैं .—

"स्वाध्याये नित्ययुक्त स्याद्दान्तो मैत्र. समाहित. ।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पक ॥"
अर्थात् वानप्रस्थी स्वाध्याय मे नित्ययुक्त रहे।

सन्यासी के लिए तो उसका कर्तव्य ही यह बताया गया है कि विद्या दान और धर्म प्रचार करना उसका कर्तव्य है। सन्यासी का तो प्रत्येक समय ध्यान ब्रह्म मे ही रहता है। वह तो स्वाध्याय करता ही रहता है।

इससे दिखाया गया कि मनुष्य को सारा जीवन ही स्वाध्याय मे लगा देना चाहिए। ब्रह्मचर्याश्रम मे विशेष बल इसलिए दिया कि वह अगले आश्रमो का आधार है। यदि वहा स्वाध्याय मे रहने का अभ्यास हो जायगा तो अगले आश्रमो मे भी स्वाध्यायी रह सकेगा। जिसको पहले से आदत नही डली वह अन्त मे चाहे कि मुझे एक दम ऐसा अभ्यास पड जाय सो होना कठिन है। जिसने स्वाध्याय मे रम करके ब्रह्मचर्याश्रम को पक्का कर दिया है वह अगले आश्रमो मे भी यथा योग्य रीति से गुजर जायगा, जिन्होने ब्रह्मचर्याश्रम को पक्का नही किया उनका अगला सारा जीवन कच्चा दुखमय रहेगा यह निश्चय जानना चाहिए।

ब्रह्मचर्य और स्वाध्याय शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नति मे किस प्रकार सहायक है।

ब्रह्म मे चरण करने से अथवा स्वाध्याय करने से क्या मिलता है। इसको पतजलि मुनि बतलाते है "ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठाया वीर्यलाभ ॥

—यो०पा०२सू०३८

ब्रह्मचर्य व्रत को यदि पालन करे अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय को यदि सयम करे तो उसको सब प्रकार के सामर्थ्य की प्राप्ति होती है। वह मनुष्य अपनी विविध शक्तियो को सम्पादन करके वह २ काम ससार को करके दिखा सकता है जिनका होना साधारण लोग मनुष्य की शक्ति से बाहर समझते है। जिसका सब इन्द्रियो पर सयम हो जाता यह समझ लेना चाहिए कि उसका मन भी उसके वश मे ही रहता है। इधर उधर डोलने फिरने से मनुष्य का सामर्थ्य क्षीण होता है। मन के वशीभूत होने से ही सामर्थ्य की प्राप्ति होती है। अतएव ब्रह्मचारी मे मानसिक शक्ति की उन्नति भी समझनी चाहिए अर्थात् ब्रह्मचारी मे जबरदस्त Will Power हो जाती है। वीर्य के वेग को सयम करने से जो वीर्य सचय होता है वह स्वाध्यायी पुरुष का जो विचार करता रहता है—विचार मे लग जाता है तथा उलटे क्रम से पुन अन्य धातुओ मे परिणत हो जाता है। और इस प्रकार शरीर की सब धातुओ को पुष्ट करता शारीरिक उन्नति

करता है। साधारण अवस्था मे वीर्य लोहित धातु मे घला रहता है। जब कोई कामोत्तेजक भाव देख के सुन के पढ के स्पर्श से किसी प्रकार भी मन मे विकृति उत्पन्न करता है तो लोहित धातु से वीर्य फट जाता है और बह कर अण्डकोष मे जा पडता है, फिर जब उपस्थेन्द्रिय मे किसी प्रकार Irritation होती है तो मूत्र के साथ शरीर के बाहर निकल जाता है। वीर्य के वेग को रोकने का यह अर्थ है कि अपने मन मे ऐसा भाव ही न उत्पन्न होने देना जिससे लोहित धातु से वीर्य फट जाये। यदि वीर्य फट जाये तब तो उसका निकल जाना ही अच्छा है। परन्तु प्रयत्न ऐसा करना चाहिए कि जिससे फटने न पावे। इसी लिए शिक्षित लोग विशेष उपन्यास विशेष काव्य तथा विशेष २ प्रकार की कथा कहानिया पढनी या कहनी जो ऐसे भावो को उत्पन्न कर सकती है जिनसे मन मे विकृति हो, निषेध करते है। यदि कोई आदमी इतना अधिक सयमी हो जैसे स्वामी जी थे जो गृहस्थ विषयक, पति पत्नी के प्रेम विषयक सब प्रकार की बातो को जानते थे लिख भी गए परन्तु पूर्ण ब्रह्मचारी रहे, यदि किसी की ऐसी अवस्था हो जाये तो वह यदि पढे तो उसे हानि होने की सम्भावना नही परन्तु वे लोग जो अभी अभ्यास मार्ग मे पडे ही है जिन्हे अभी पूरा सयम नही वे इस प्रकार के निषिद्ध कार्यों मे यदि पडेगे तो उन्हे अवश्य ही हानि उठानी पडेगी और भविष्यत् जीवन मे पश्चाताप करना पडेगा। शिक्षक वर्ग अथवा कोई भी जो किसी को कुछ बात कहता है वह अच्छे भाव से ही उसे ग्रहण करनी चाहिए। चाहे कहने वाला किसी भाव से भी कहे। किसी बात मे दूसरे का भाव बुरा लेने से अपना आत्मा तो बिगडता ही है, परन्तु बहुत-सी बातो से जो लाभदायक भी होती है इसी कारण वचित रहता है। दूसरे से यदि कोई बात बुरे भाव से कही है तो कहने वाले का अपना आत्मा कुलषित होगा, सोचना यह चाहिए कि जो बात बताई गई है उस मे क्या लाभ विशेष हो सकता है यदि लाभ विशेष कोई न दीखे और हानि उसमे कोई न हो तो उसको ग्रहण करने मे क्या डर है, यही समझ लेना चाहिए कि बताने वाले ने कोई लाभ सोचा होगा जो हमारी दृष्टि मे नही आता। बहुत बार मनुष्य अज्ञान के कारण कई बातो को जो साक्षात अथवा परम्परया हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करने वाली है उन्हे बहुत गहरी विचार की कसौटी पर न परख करके बुरी बातो को अच्छा समझ लेता है और समझाने पर अपने कार्य को ठीक समझता हुआ नही छोडता प्रत्युत समझाने को सर्वथा त्याग करके मनुष्य को अपना हानि लाभ विचारते हुए दूसरो की बात सुननी चाहिए। अभिमान ऐसी वस्तु है जो मनुष्य को अन्धा बना लेती है और उस मे अच्छे बुरे मे विवेक करने की शक्ति मार देती है। ब्रह्मचर्य काल मे अभिमान का सर्वथा त्याग करना ही मनुष्य को अपना बडा भारी कर्तव्य समझना चाहिए। इसी से उसकी विवेक शक्ति का प्रसार होगा और वह अपने भविष्यत् जीवन के कार्यों मे सफल हुआ करेगा। उस पुरुष मे दूरदर्शिता की शक्ति बढेगी। और सत्पथ पर बडी आसानी से चलता चला जायेगा। जिस पुरुष मे यह ऊपर के गुण होगे उसमे साहस उत्पन्न होगा। दृढता आती आएगी। जिस कार्य को हाथ मे लेगा उस से घबरायेगा नही पूर्ण कर ही

देने का प्रयत्न करेगा। ऐसे पुरुषो मे निर्भीकता उत्पन्न हो जाएगी। उसके अन्दर दूसरो के लिए सहानुभूति का भाव उत्पन्न होगा। दूसरो से प्रेम करेगा उनकी सहायता करेगा। तथा अन्यो को अपने साथ मिला कर बडे २ कार्यों को सहज ही से सिद्ध कर सकेगा। सगठन शक्ति को लोगो मे उत्पन्न करने मे वह ही समर्थ होगा। और देश में जातीयता को उत्पन्न कर सकेगा। ये सब गुण मनुष्य की आत्मिक उन्नति को सूचित करते हैं। इनका आधार वह ही ब्रह्मचर्य और स्वाध्याय है।

जो मनुष्य अभिमानी होगा, वह क्रोधी होगा अस्थिर स्वभाव का होगा, अविवेकी होगा, अधीर होगा, शीघ्रकारी होने मे बारबार कुपथ मे पडेगा, अधिक खर्चीला होगा, स्वार्थी होगा, उसमे सब उनसे उलटे गुण होगे, जो ऊपर आत्मिक उन्नति वाले मे दिखाये हैं।

चरक मे किस उत्तमता से ब्रह्मचर्य की प्रशसा की है। यथा :—

"पुण्यतमायु प्रकर्षकर जराव्याधिप्रशमनम्। ऊर्जस्करमनृत शिव शरण्यमुदात्तमत श्रोतुमर्हथोपधारयितु प्रकाश यितुञ्च प्रज्ञानुग्रहार्थमार्य ब्रह्मचर्यम्।"—अर्थात् ब्रह्मचर्य पुण्यतमायु को बढाने वाला, जरा और व्याधियो का प्रशमन करने वाला, सहन शक्ति को देने वाला, ऊचे विचारो को उत्पन्न करने वाला स्वय कल्याणरूप और शरणागत का रक्षक है।

मनुष्य यदि सयम के साधन स्वाध्याय को करता हुआ ब्रह्मचर्य को धारण करे तो वह नीरोग रहेगा, और वश परम्परा से प्राप्त जो राग है शनै शनै उन्हे भी प्रयत्न से शमन करने मे समर्थ होगा।

लोग सैकडो औषधिया खाते पीते हैं पर वे अपना उत्तम प्रभाव नही कर सकती यदि ब्रह्मचर्य की उनके साथ सहायता न हो। अधिक क्या केवल ब्रह्मचर्य ही परम रसायन है और आयुष्य के देने वाला है। जैसा कि वाग्भट्टाचार्य ने अष्टाग हृदय मे वर्णन किया है।

धन्य यशस्यमायुष्य लोक द्वयरसायनम्।
अनुमोदामहे ब्रह्चर्यमेकान्तनिर्मलम्॥
आहार शयना ब्रह्मचर्यैर्युक्तयाप्रयोजितै।
शरीर धार्यते नित्यमागारमिव धारणै॥

ठीक इसी प्रकार भगवान् आत्रेय ने चरक सूत्र मे स्थान मे जीवन के कारणो का वर्णन करते हुए शरीर के तीन उपस्तम्भ प्रथम आहार द्वितीय निद्रा तृतीय ब्रह्मचर्य बताये हैं और कहा है कि इन्ही के युक्ति पूर्वक व्यवहार करने से शरीर के बल वर्णादि की वृद्धि होती है। आरोग्य सबल मनुष्य की दीर्घायु होना निर्विवाद है।

सुप्रसिद्ध डा० "एक्टन" साहब ने कहा है कि मैथुन का प्रभाव पट्ठो द्वारा मस्तिष्क तक अवश्य पहुचता है और दुर्बल जन प्राय अघात से मर भी जाते हैं देखिए शशक स्खलित होने के पश्चात् एक तरफ को गिर पडता है। इससे आप स्वय विचार सकते हैं कि ब्रह्मचर्य खण्डन ही पूर्णायु का कट्टर शत्रु है। अन्यथा जो ब्रह्मचय धारण करेंगे वह अवश्य दीर्घायु होंगे, फलत: यह कहना पडेगा कि दीर्घायु प्राप्त करने के ब्रह्मचर्य से अधिक उपकारक दूसरा साधन नही है।

डा० कैसमन अपनी पुस्तक The Man, Physical Education के पृ० ४ और पृ० ११ मे लिखते है कि उत्तम स्वास्थ्य बनाने के लिए जिन २ बातो की आवश्कता है उनमे एक Right Thinking है। अर्थात् जो मनुष्य प्रत्येक बात का अच्छा ही अर्थ ग्रहण करेगा उसका मन चचल उद्विग्न न होगा। शान्त चित्त होने से उसके अग प्रत्यग ठीक २ कार्य करेंगे और स्वास्थ्य प्राप्त होगा अतएव शारीरिक उन्नति होगी।

"Thinking right will help you to secure help, will keep your blood flowing through your veins in right lively fashion"

वे ही डा० साहब लिखते है—Memory का आधार शारीरिक स्वास्थ्य है। परन्तु शारीरिक स्वास्थ्य का आधार study अर्थात् स्वाध्याय या ब्रह्मचर्य से है इसलिए Study स्वाध्याय करने से Memory बढती है यह समझना चाहिए।

डा० कैसमैन ही कहते है कि Personal Magnatism अर्थात् आत्म ज्योति प्राप्त करनी हो तो उसके लिए भी Study (स्वाध्याय) की आवश्यकता है।

डा० कैसमैन अपनी English नाम की पुस्तक के पृ० ७ मे लिखते है कि—

"Veriety in reading contains truth, and that which contalns truth contains strength"

(स्वाध्याय) से मानसिक वाचनिक और कार्मिक तीनो प्रकार का सत्य मिलता है और सत्त से बल प्राप्त होता है।

शारीरिक मानसिक और आत्मिक तीनो प्रकार की उन्नति का आधार स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य ही है यह दिखाया जा चुका। विद्या मनुष्य मे मानसिक उन्नति को सूचित करती है। उस विद्या की स्थिति ब्रह्मचर्य के बगैर ऐसी ही है जैसे छेद हुए घडे मे जल की स्थिति है। कवि ने कहा है,—

दत्तापि विद्या गुरुणायथेष्ठ न ब्रह्मचर्येण विनाहितिष्ठेत्।
यथा घटे छिद्रयुते प्रपूर्ण पयोनतिष्ठेत् खलु बिन्दुमात्रम्॥

(सदर्भ प्रचारक माघ २ सम्वत् १९७२-पृ०११-१३) से सभार।

0 — 0

गुरुकुलीय आचरण

ले० माननीय बलभद्र कुमार हूजा, कुलपति।

गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली मे वेदाग सत्यशास्त्रो के अध्ययन को प्रमुख स्थान दिया जाता है। लेकिन वेदाध्ययन से यह अभिप्राय कदापि नही था कि वेद मत्रो को केवल तोते की तरह रट लिया जाय और जगह जगह अपनी स्मरणशक्ति का प्रदर्शन करके अहकार वृत्ति को तुष्ट किया जाय। वेदाध्ययन का लक्ष्य यह है कि वेदानुकुल आचरण का अभ्यास किया जाये। इसलिये सबसे पहले इस बात पर जोर दिया जाता है कि वेद मत्रो के अर्थों का पूर्ण ज्ञान हो। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश मे स्पष्ट कर दिया है- "जो वेद को स्वर और पाठ मात्र पढके अर्थ नही जानता वह जैसा वृक्ष, डाली, पत्ते, फल, फूल और अन्य पशु धान्य आदि का भार उठाता है वैसे भारवाह अर्थात् भार का उठाने वाला है और जो वेद को पढता है और उसका यथावत् अर्थ जानता है वही सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके देहान्त के पश्चात् ज्ञान से पापो को छोड पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होता है।"

ऋषि ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि सब ब्रह्मचारियो का रहन-सहन खान-पान एक प्रकार का हो, गुरुकुल मे किसी भी प्रकार का, ऊच-नीच भेद भाव सर्वथा अमान्य है। ऋषि ने लिखा है कि सबको तुल्य वस्त्र, खान पान आसन दिये जावे, चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हो, चाहे वह दरिद्र की सन्तान हो, सबको तपस्वी होना चाहिये।

ऋषि दयानन्द यम–नियम के पालन पर विशेष बल देते थे। उनके शब्दो मे गुरु और शिष्य "अहिंसा (वैर त्याग), सत्य (सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना) अस्तेय अर्थात् मन, वचन कर्म से चोरी-त्याग, ब्रह्मचर्य अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का सयम, अपरिग्रह (अत्यन्त लोलुपता स्वत्वाभिमान रहित होना) इन पाचो का सेवन सदा करे। शौच (स्नानादि से पवित्रता) से सम्यक् प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नही लेकिन पुरुषार्थ जितना हो सके उतना करना, हानि-लाभ मे हर्ष या शोक न करना), तप (कष्ट सेवन से भी धर्मयुक्त कर्मों मे अनुष्ठान) स्वाध्याय (पढना, पढाना) ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर की भक्ति विशेष से आत्मा को अर्पित रखना) ये पाच नियम कहाते

हैं। यमो के बिना इन नियमो का सेवन न करें, किन्तु इन दोनों का सेवन किया करें।

"विद्वान और विद्यार्थी के योग्य है कि वैर बुद्धि छोडकर सब मनुष्यो को कल्याण के मार्ग पर उपदेश करें और उपदेष्टा सदा मधुर सुशीलता युक्त वाणी बोले। जो धर्म की उन्नति करे वह सदा सत्य मे चले और सत्य का ही उपदेश करे।"

"आचार्य अन्तेवासी अर्थात् अपने शिष्य और शिष्याओ को इस प्रकार उपदेश करे कि तू सदा सत्य बोल, धर्माचरण कर, प्रमादरहित हो के पढ-पढा, पूर्ण ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्याओ को ग्रहण कर और आचार्य के लिये प्रिय धन देकर विवाह कर, सन्तानोत्पत्ति कर, प्रमाद से सत्य को कभी मत छोड, प्रमाद से सत्य का त्याग मत कर, प्रमाद से आरोग्य और चतुराई को मत छोड, प्रमाद और पढने और पढाने को मत छोड। देव, विद्वान और माता-पिता की सेवा मे प्रमाद मत कर। जो आनन्दित धर्मयुक्त कर्म है उन सत्य भाष्णादि को किया करे, धर्मयुक्त कर्म कर, उनसे भिन्न मिथ्या भाषणादि कभी मत कर, जो हमारे सुचरित्र अर्थात् धर्म युक्त कर्म हो, उनका ग्रहण कर और जो पापाचरण है उनको कभी मत कर। जो हमारे मध्य मे उत्तम विद्वान, धर्मात्मा ब्राह्मण है उन्ही के समीप बैठ और उन्ही का विश्वास कर। श्रद्धा से देना. अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय देना, और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिये। जब कभी तुझको कर्म वा शील तथा उपासना ज्ञान मे किसी प्रकार का सशय हो तो जो वे समदर्शी, पक्षपातरहित, योगी आर्द्रचित्ताधर्म की (कामना करने वाले धर्मात्मा जन हो जैसे वे धर्ममार्ग मे वर्ते वैसे तू भी उनमे वर्ता कर। यही आदेश, आज्ञा, यही उपदेश, यही वेद की, उपनिषद की शिक्षा है।

ऋषि दयानन्द ने जोरदार शब्दो मे कहा* कि — "जो विद्या पढाने मे विघ्न है उनको छोड देवे जैसे कुसग अर्थात् दुष्ट विषयी जनो का सग। दुष्टव्यसन जैसे मद्यादि सेवन और वेश्यागमनादि, बाल्यकाल मे ही विवाह अर्थात् पच्चीस वर्ष से पूर्व पुरुष और सोलहवे वर्ष से पूर्व कन्या का विवाह हो जाना, राजा, माता पिता और विद्वानो का प्रेम वेदादि शास्त्रो के प्रचार मे न होना, अतिभोजन, अतिजागरण, पढने, पढाने, परीक्षा लेने व न लेने मे आलस्य या कपट करना, सर्वोपरि विद्या का लाभ न समझना, ब्रह्मचर्य से वीर्य, बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य धन की वृद्धि न मानना ईश्वर का ध्यान छोडकर पाषाणादि जड मूर्ति के दर्शन पूजन मे व्यर्थ काल खोना, वर्णाश्रम के धर्म को छोड कर उर्ध्वपुण्ड आदि व्रत करना, काश्यादि तीर्थ और राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती, गणेशादि त्रयोदशी आदि व्रत मानना,

पाखण्डियों के उपदेश से विद्या पढने मे अश्रद्धा का होना, इधर उधर व्यर्थ घूमते रहना इत्यादि मिथ्या व्यवहारो मे फंस कर ब्रह्मचर्य और विद्या के लाभ से रहित होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं ,"

स्पष्ट है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की आधारशिला ब्रह्मचर्य, अप्रमाद धर्मयुक्त कर्म, उत्तम व्यवहार पर अवलम्बित है और इसी प्रकार के वातावरण को गुरुकुल कागडी मे प्रवाहित करने के लिये वहा के आचार्य कृत सकल्प हैं।

000

(साप्ताहिक "आर्य सन्देश" नई दिल्ली दि० १२ २ ७८ से साभार)

देश एवं विदेशों में यज्ञ विज्ञान के प्रति रूचि

ले० श्री पं० वीरसेनजी वेदश्रमी वेद विज्ञानाचार्य
वेदन सदन, महारानी रोड, इदौर ४५२ ००७

यज्ञ से पृथिवी स्वर्ग बनेगी

वेदो का अपूर्व देन यज्ञ है। किसी समय-स्वर्गकामी यजेत - इस घोषणा के आधार पर स्वर्ग की कामना के लिये यज्ञ किये जाते थे। उस समय स्वर्ग कल्पना की अदृष्ट परिधि मे था। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने उसे दृष्ट परिधि मे स्थित कर दिया और कहा कि इसी जीवन मे इसी पृथिवी पर सुख विशेष का नाम ही स्वर्ग है और दुख विशेष की घोर अनुभूति ही नरक है। ऐसी स्थिति मे - स्वर्गकामी यजेत- का अर्थ सार्थक हो जाता है। हमे अपने चारो ओर स्वर्गमय लोक, स्वर्ग का मण्डल व परिधि यज्ञ के अनुष्ठानो से निर्मित करके पृथिवी को स्वर्ग बना सकते है।

यज्ञ का विदेशों मे प्रयोग

आज पृथिवी एव अन्तरिक्ष, के आश्रय से अनेक सुख साधनो का विस्तार विज्ञान ने किया है - परन्तु उसकी प्रतिक्रिया के रूप मे अनेक नारकीय दुखो और विपदाओ की वृद्धि भी चक्रवृद्ध रूप मे स्वभावत व्याप्त हो रही है। ऐसी स्थिति मे विदेशो मे यज्ञ के प्रति कुछ आकर्षण उत्पन्न हुआ- और यज्ञ का प्रयोगात्मक अनुसधान कार्य अमेरिका व जर्मनी मे तथा योरोप के अन्य राष्ट्रो मे प्रारम्भ हुआ। परिणाम स्वरूप यज्ञ की उपयोगिता उत्तरोत्तर उनको ज्ञात होने लगी। यह परिणाम महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य, यज्ञ करने की प्रेरणा और आर्य समाज द्वारा यज्ञ परम्परा को प्रचलित करने से हुआ।

त्रिविध सस्थाओं द्वारा यज्ञ पर अनुसधान कार्य

आज देश-विदेश मे कतिपय संस्थाये यज्ञ का कृषि पर, रोगो के निवारण पर, पर्यावरण शोधन, भूमि को उर्वरा बनाने, कृत्रिम खाद के बजाय यज्ञ के धूम व भस्म

का प्रसारण फसलो पर करके तथा वेद मन्त्रो की ध्वनि का कृषि की उत्पत्ति मे १० से २० प्रतिशत वृद्धि तथा कही तो कई गुना अधिक लाभ अनुभव कर रही हैं। इनमे फाइव फोल्ड पाथ वाशिंगटन की शाखाये, न्यू वे आश्रम लोनावाला, सत्यधर्म प्रचार माधवाश्रम, भोपाल आदि सस्थाये यज्ञ की व्यावहारिक उपयोगिता का अनुसधान कर रही है। कतिपय अन्य व्यक्ति भी यथा श्री नाना साहेब काले अग्निहोत्री आदि भी परीक्षणरत हैं।

वाशिंगटन मे अग्निहोत्र यूनिवर्सिटी

फाइव फोल्ड पाथ ने तो वाशिंगटन मे अग्निहोत्र यूनिवर्सिटी स्थापित करके अमेरिका, जर्मनी, मे तथा कतिपय अन्य देशो मे तथा भारत मे यज्ञ के परीक्षण किये है एव अखण्ड यज्ञो के परिणामो को अत्युत्तम अनुभव कर रहे है। क्या ही अच्छा होता कि यदि आर्य समाज अपनी भी शक्ति वेदो के प्रचार एव यज्ञ के व्यवहारिक पक्ष को संसार के उपकार के लिये प्रमाणित करने मे अग्रसर होता।

आर्य समाज यज्ञों के अनुसधान कार्यों को महत्व दे

आर्य समाज रूढिवादी पारायण यज्ञो के प्रदर्शनो मे उलझ गया और यज्ञ जो वेद के विज्ञान को जानकर वेदो के विद्वानो के द्वारा होने थे वे साधुवेशधारी सन्यासी, महात्माओ के लिये स्वप्रतिष्ठा, अपने चेले निर्माण तथा धनोपार्जन का उपाय बन गये। उन ने अशुद्ध मन्त्र पाठ को निर्दोष प्रमाणित कर अज्ञान का ही प्रचार किया और यज्ञ के वैज्ञानिक अनुसधान का मार्ग अवरूद्ध कर दिया। यज्ञो मे व्यर्थ की बकवास के तथा रोचक शब्दो द्वारा जनता को प्रसन्न करने मात्र को प्रोत्साहन देकर वेदमन्त्रो के शुद्ध और सस्वर पाठ को तिरस्कृत कर दिया। अत अन्य सस्थाये यज्ञ कार्य मे आगे बढ गई है।

अन्य संस्थाओं तथा विदेशियों द्वारा यज्ञ कार्य मे बढना हमारी अकर्मण्यता के लिये चैलेंज

२ वर्ष पूर्व अमेरिका के फाइव फोल्ड पाथ (यज्ञ, दान, तप, कर्म और स्वाध्याय) के एक सदस्य इन्दौर मे कालेजो मे तथा अन्य संस्थाओ मे यज्ञ पर व्याख्यान देने आये। मेरे यहा आकर उनने ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त तथा त्र्यम्बकयजामहे० - आदि मन्त्र सस्वर तथा ऋग्वेद शैली से ही सुनाये। उनके उच्चारण मे अत्यन्त शुद्धता थी। क्या हमारे लिये यह चैलेंज नही है। उनका तांबे का कुण्ड उनके साथ

था। दोनों समय उदय और अस्तकाल मे यज्ञ करते थे। मेरे यहा भी उनने यज्ञ किया। ये महानुभाव यज्ञ का मनोवैज्ञानिक प्रभाव इस पर अनुसधान कर रहे है और यज्ञ द्वारा अनेक मानसिक रोगों पर अच्छा प्रभाव अनुभव प्राप्त किया।

वेद एवं महर्षि दयानंद की विचारधारा ही स्वच्छ वैज्ञानिक नेतृत्वदाता है

३-४ वर्ष पूर्व अग्निहोत्र यूनिवर्सिटी वाशिगटन के सस्थापक तथा यज्ञ प्रचारक भारत आये हुए थे। उनका तार मुझे प्राप्त हुआ कि अमुक तारीख को मैं इन्दौर आप से मिलने आ रहा हूँ। नियत दिन वे आये तथा उनने मेरा वह सब काम जो वेद का अनेक रूप मे किया है उसे देखा। भारत सरकार द्वारा यज्ञ से वर्षा कार्य के करने तथा वृष्टि यज्ञ की पद्धति जो मैने भारत सरकार को सन् १९७६ मे भेजी थी। उनकी १ १ प्रति ले गये। इसके अतिरिक्त वृष्टि विज्ञान का मेरा उपलब्ध साहित्य, वैदिक सम्पदा की प्रति भी ले गये तथा उनसे जो परिणाम यज्ञ के कृषि पर अमेरिका के परीक्षणो से ज्ञात किये उसके आधार पर यज्ञ की कृषि के लिये उपयोगिता के ५ परिपत्र (बुलेटिन) मुझे दी। इस भेट के बाद भी वे भारत मे आते रहे और मेरे जो यज्ञ सम्बन्धी लेख मैने उनके गुरु भाई श्री डॉ० एस० एन० सुपेकर, एम० एससी०, पी० एच० डी० को पूना भेजे थे, वे उनसे ले गये।

जर्मन में यज्ञ विज्ञान के प्रति उत्सुकता

पश्चिमी जर्मनी के एक जर्मन बर्थोल्ड मोनिकाजेहूले यज्ञ की भस्म को अनेक रूप मे चिकित्सार्थ प्रयोग करने का प्रचार करते है। मैंने यज्ञ सम्बन्धी अपनी एक अग्रेजी की लघु पुस्तक-थ्रीमेन करेन्ट प्राब्लम्स एण्ड देयर सोल्यूशन थ्रू साइन्स आफ यज्ञ-लगभग २ वर्ष उन्हें भेजी थी। उनका पत्र अभी दि० २७ अगस्त, १९८३ को प्राप्त हुआ। उनने लिखा कि उक्त पुस्तक का जर्मन भाषा मे अनुवाद करने की आज्ञा प्रदान करे जिससे कौसिल ऑफ योरोप को भेज सके। इसके पश्चात् मेरे एक यज्ञ सम्बन्धी लेखक का जो अगस्त मे मैने भेजा था उसके जर्मन भाषा के अनुवाद की भी प्रति भेजी। वह मेरा लेख था - यज्ञ ए वैदिक प्यूरीफिकेशन प्रोजेक्ट ऑफ् अॅटमोस्फियर। इसके पश्चात् अभी अक्तूबर मास मे अपने दो लेख जो इजीनियर्स इडिया की पत्रिका के विशेषाको मे छपे थे उनका भी अग्रेजी अनुवाद कराकर भेजा है तथा एक और भी लेख भेजा है - जिनके निम्न शीर्षक है - (१) साइन्स ऑफ प्यूरीफिकेशन ऑफ एन्वायर्नमेट इन एनशेन्ट इडिया, (२) यज्ञ, रिसोर्स टु ए रिवोल्यूशनरी चेज इन एग्रीकल्चर (३) दि पॉसीबिलिटी ऑफ कट्रोल ओवर स्ट्राग विन्डस स्टार्म, फ्लडस एण्ड ड्रॉटस।

यज्ञों के प्रचार का सुअवसर - आर्य समाज आगे बढ़े

दिनाक १६ सितम्बर, १६८३ को जर्मनी से श्री बर्थोल्ड का पत्र आया कि मैं सभवत: दिसम्बर मास मे भारत आऊगा तब इदौर आकर यज्ञ के परीक्षणो एव परिणामो को जानना चाहूगा। अर्थात् आज योरोप, अमेरिका, जापान तथा पृथ्वी के सभी भागो मे यज्ञ की व्यवहारिकता के प्रचलन करने से वेद और यज्ञ का प्रचार का अत्युत्तम अवसर है। आर्य समाज देश विदेश मे अपनी यज्ञ की प्रयोगशालाये स्थापित कर ससार को प्रत्यक्ष लाभान्वित करने का महोपकार कर्म करने मे अग्रसर हो तो आसुरी विचारो का भी दमन होगा और सर्वत्र सुख शान्ति होगी। पर्यावरण शोधन का, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, आधी-तूफान आदि उपद्रवो की शान्ति का एकमात्र उपाय यज्ञ ही है। यज्ञ से ही द्यौ शान्ति होगी - यज्ञ से ही अन्तरिक्ष शान्ति होगी तथा - पृथिवी शान्ति - होगी और - सर्वशान्ति, होगी। तभी शान्तिदेव शान्ति - की अनुभूति होगी और सामा शान्तिरेधि - अपने मे भी शान्ति होगी - अन्यथा नही।

000

वैदिक रश्मि

सम्पादक - श्री रामप्रसाद वेदालंकार
आचार्य एव उपकुलपति

पंचम रश्मि

अग्ने विवस्वदामर ॥ सम०पू०म० १०

सक्षिप्त अन्वयार्थ --(अग्ने ! विवस्वत् आमर) हे प्रभो ! (तू हमे) ज्ञान दे।
अन्वयार्थ —(अग्ने ! विवस्वत् ! आमर) हे प्रभो ! तू हमे तमोनिवारक ज्ञान प्रदान कर।

व्याख्या - हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! हे ज्योति स्वरूप जगदीश्वर ! तू हमे "विवस्वत्" दे - प्रकाश - दे - ज्योति दे - ज्ञान दे। तू हमे वह विवस्वत् दे - वह प्रकाश दे - वह ज्योति दे - वह ज्ञान दे जो हमारे भीतर के कपाट खोल दे - जो हमारे भीतर के सर्वविध तम को छिन्न भिन्न कर दे - जो हमारे अन्दर के सर्वविध अविद्यान्धकार को हम से सर्वथा पृथक् कर दे।

हे प्रभुवर ! आप की वह दिव्य ज्योति - आप का वह परम प्रकाश - आप का वह अनुपम आलोक हमारे उस तम को छिन्न भिन्न कर दे - हमारे उस अविद्यान्धकार को दूर कर दे जिस के कि हमारे भीतर विद्यमान रहने से उस अविद्या के साथ-साथ अस्मिता-राग-द्वेष और अभिनिवेश रूपी क्लेश भी बसने लगते है, फलने-फूलने लगते है। इन के भीतर वर्तमान रहने से सदा हमारे अन्दर अज्ञान रूपी कोहरा छाया रहता है, जिस के कारण से हमे अपने से भिन्न किसी और के अद्भुत व्यक्तित्व का आभास ही नही हो पाता। बस हम तब यही समझते रहते है कि मैं ही मैं हू, हम ही हम है, हमारी ही हमारी सत्ता ससार मे है, और सब तो मानो जैसे कुछ है ही नही। फिर जो हमारे अनुकूल होते है, उन से हमारा राग हो जाता है, और जो हमारे प्रतिकूल होते है, उन से हमारा द्वेष हो जाता है।

१. विवस्वत्—विवासयति-पृथक् करोति तम इति विवस्वज्ज्योति।

हृदय मे राग-द्वेष के आते ही किही से तब हम अत्यन्त स्नेह करने लगते है और किही से हम अत्यन्त घृणा करने लगते हैं। आगे चलकर इसी राग द्वेष के कारण ही जिनसे हमे राग होता है, जिन से हमारा प्यार होता है, उन की हम सदा स्थान-स्थान पर

शसा प्रशंशा करने लगते है और जिन के प्रति हमारे हृदय मे द्वेष होता है उन की हम सदा जगह-जगह निन्दा चुगली आदि करते रहते है। जिन के प्रति हमारा तब राग होता है उन्ही की सुख-सुविधाओ की हमे सदा चिंता रहती है, उन्ही के खान-पान, रहन-सहन आदि का हम जी-जान से सदा ध्यान रखते हैं, और जिन के प्रति हमारे हृदय मे द्वेष होता है उन की हमे कभी परवाह ही नही होती, उन की सुख-सुविधाओ की, खान-पान और रहन-सहन की हमे जरा भी कभी फिकर नही होती। जिन के प्रति हम मे राग होता है उन्ही के सुख-सौभाग्यो के लिये हमारे हृदयो से सदा आशीर्वाद निकलता है, सदा ये प्रार्थनाए निकलती है, कि—"प्रभु उन्हे लम्बी आयु दे, प्रभु उन्हे सदा सुख-सौभाग्यो से सम्पन्न रखे।" पर इस के विपरीत जिनके प्रति हमारे हृदय मे द्वेष रहता है, उनके प्रति हमारे हृदय से सदा बुरा ही बुरा सोचा जाता है। फिर यदि और भी इस विषय मे आगे बढते है तो फिर हम अपनी हार्दिक भावनाओ को व्यवहार मे लाकर अपने प्रियो के प्रति शुभ कर्मो के रूप मे प्रवृत होते हैं और अप्रियो के प्रति हिंसक बनकर प्रवृत्त होते है। कई बार वैसे हमारे कोई द्वेष के पात्र नही होते। पर चूकि वे हमारे प्रियजनो के मार्ग मे बाधक होते है इसलिये हमारे मनो मे उनके प्रति भी द्वेष हो जाता है, और तदनुसार मन वचन कर्म से उनके प्रति अप्रिय और कठोर व्यवहार भी होने लगते हैं। इस तम - इस अविद्या - इस अज्ञान के कारण ही हमे अपनी जान तो बडी प्यारी लगती है, अपने बन्धु-बान्धवो की जान भी बडी प्यारी लगती है। अत: हम और वे कही समाप्त न हो जाए, यह अभिनिवेश- यह मृत्युरूप भय भी सदा हमारे भीतर वर्तमान रहता है। इस भय के कारण हमारा सदा हार्दिक प्रयास रहता है कि मै न मरू, हम कभी न मरे और न ही हमारे ये प्रिय व्यक्ति कभी मरें।

इस प्रकार जब हमारे भीतरतम-अविद्यान्धकार–अर्थात् अज्ञान अपना डेरा जमाए रहता है तो फिर उस समय हमे अतिकाम, अतिक्रोध, अतिलोभ, अतिमोह और अत्यहकार आदि प्रिय लगते हैं। इस अतिकाम के कारण फिर हमे सदा विषय–वासनाओ मे डुबे रहने मे ही सुख अनुभव होता है। इस अतिक्रोध के कारण हमे सदा दूसरो के प्रति क्रोध करने, दूसरो के प्रति गुस्सा करने, दूसरो की मन वचन कर्म से हिंसा करने मे सुख अनुभव होता है, सदा दूसरो को सताना और परेशान करना हमे अच्छा लगता है, सदा दूसरो को तबाह और बर्बाद करने मे हमे खुशी होती है। इस अतिलोभ के कारण हम सदा लोभी होकर धन के पीछे सदा पागल से बने रहते है, और तब हम यह सोचने लगते हैं कि "धन आए, वह चाहे कैसे भी क्यो न आए। किसी की जेब काट कर आए, किसी की चोरी करके आए या किसी को मार कर आए, किसी को उजाड कर आए इत्यादि। अतिमोह के कारण हम किन्ही व्यक्तियो पर मुग्ध होकर सदा यही सोचने लगते है कि—"ये हमारे बन्धु-बान्धव हैं, ये हमारे

परिवार के सदस्य हैं, ये हमारे अपने हैं, अत इन से सदा हमारा लगाव रहता है। और हम तब यदि सोचते हैं तो फिर बस केवल उन्ही के लिए सोचते हैं, उन्ही के लिए दौड-धूप करते हैं, उन्ही की ही सुख-सुविधाओ की हमे सदा चिन्ता रहती है। ऐसी अवस्था मे फिर जो कुछ भी हम से बनता है हम उनके लिये करते है। इतना ही नही इस अतिमोह के कारण ही फिर हम उनके लिये अनेको पाप भी करते हैं, झूठ-सच भी बोलते हैं, अन्यो के प्रति अन्याय भी करते हैं, अन्यो की अवहेलना भी करते है, अन्यो का अपमान और तिरस्कार भी करते है, नही-नही हम उनके लिये अन्यो पर बडे से बडा अत्याचार भी करते है, अन्यो को कष्ट भी देते है, अन्यो को यहा तक कि समाप्त भी कर देते है। रेल वा बस मे ही देख लीजिए—कितना भी कोई वृद्ध वा कमजोर व्यक्ति क्यो न खडा हुआ हो, कितनी भी कोई वृद्धा—बडी-बूढी मा क्यो न खडी हो गोद मे लिये हुए बालक को कोई महिला बेचारी क्यो न खडी हो, परन्तु मारे युवक समर्थ पुत्र को तो बैठने के लिये जगह मिलनी चाहिये, भले ही और को चाहे मिले न मिले। अपने प्रति अति मोह होने पर फिर हमे अपना समय तो बडा प्रिय, मूल्यवान् लगता है पर दूसरो का नही। उस समय शिष्टाचार और सद्-व्यवहार को हम बिल्कुल भूल जाते है पर फिर भी आश्चर्य यह होता है कि हम अपने को बडा ही सभ्य और बडा ही महान् समझते है। हमे उस समय यह तो सदा सूझता रहता है कि—"अमुक को चाहिये कि वह हमारे प्रति ऐसा-ऐसा व्यवहार करे। अर्थात् हम यदि रेल मे खडे हो तो वह हमे प्रेम से बैठने को जगह दे, ताकि हम भी थोडा सा बैठ ले और सहजरूप से यात्रा कर सके। यद्यपि उस सीट पर चार के स्थान पर पाच बैठे हुए होते है तो भी हमे वहा जगह दिखाई देती है। पर उसी सीट पर स्वय गाडी मे हम कभी चार के स्थान पर तीन भी बैठे हुए होते है तो भी हमे सीट खाली नही दिखाई देती और न ही अगले व्यक्तियो की कठिनाई अनुभव होती है। इसी अविद्या के कारण हम सदा अहकार मे डूबे हुए मै मैं और हम ही हम करते रहते है। हम कभी यह सोच भी नही पाते कि मेरे और हमारे अतिरिक्त भी कोई दुनिया मे बसता है।

यह तो वह तम है,—वह अविद्या-धकार है—वह अज्ञान रूपी कोहरा है जिस से कि मैं अपने अपनो के अतिरिक्त किसी और को देख नही पाता, अपने एव अपनो के अतिरिक्त किसी और को कुछ समझ ही नही पाता, अपने एव अपनो के अतिरिक्त किसी और के कष्ट वा असुविधा आदि का कुछ अनुभव कर ही नही पाता। अब जब इसी अज्ञान के कोहरे मे हमे कोई इतना स्थूल व्यक्ति भी नही दिखाई पडता तो फिर भला वह निराकार सूक्ष्म से सूक्ष्म भगवान् कैसे दिखाई देगा उसकी अनुभूति हमे कैसे होगी ? यही तो वह अविद्या है, यही तो वह तमोगुण का गहन अन्धकार है, जिसके कारण अस्मिता राग-द्वेष और अभिनिवेश नामक क्लेश भी हमारे भीतर अपने पाव पसार लेते हैं और हमे तब सदा इन ससार की वस्तुओ व्यक्तियो और स्थानो मे

उलझाए रखते है। यही हमे किसी व्यक्ति वस्तु और स्थान पर मरने मिटने के लिये सदा अहकार वश अकडाए रहते है, सदा काम क्रोध और मोह आदि के चुगल मे फसाए रहते हैं। फिर भला कैसे हम परमेश्वर की ओर बढ पा सकते हैं और कैसे उस के दर्शन पा सकते हैं। इसलिये हम तुझ उस प्यारे और सब जग से न्यारे प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि—"हे प्रभु ! तू हमे विवस्त् दे-तू हमे ज्ञान दे-तू हमे प्रकाश दे-तू हमे ज्योति दे-तू हमे तेज दे-तू हमे ओज दे। और ऐसा दे कि जिस से हमारा यह भीतर का तम-अज्ञान छूट जाये-यह भीतर की अविद्या छिन्न-भिन्न हो जाए। इस तम-अविद्या के छिन्न-भिन्न हो जाने पर हमारे भीतर विद्या का-ज्ञान का पूर्णतया प्रकाश हो जायेगा। इस से फिर हमारे भीतर अस्मिता नही रहेगी-अहकार नही रहेगा। अर्थात् तब हम यह नही समझेंगे कि केवल मैं ही मैं हू या केवल हम हम ही है इत्यादि। वरन् हमे तब यह भली-भाति भासने लगेगा कि मेरे और हमारे अतिरिक्त भी अनेको हैं। अर्थात् हमे तब मैं और हम के साथ तू-तुम और आप दिखाई देने लगेंगे। हमे तब अपने समान उनकी भी असुविधाए कष्ट और आपत्तिया दिखाई देने लगेगी। सचमुच उस समय फिर हमारे हृदय मे न किसी के प्रति राग होगा, न किसी के प्रति द्वेष होगा, न कोई हमे तब अपना दिखाई देगा और न ही कोई हमे तब पराया प्रतीत होगा। हमे तो तब कवि के शब्दो मे "सभी है अपने और सभी पराए" प्रतीत होगे। अब जब जग मे हमारे हृदय मे किसी के प्रति जब राग ही नही रहेगा तो फिर कब भला हम उससे चिपटे रहना चाहेगे या उसको अपने साथ-साथ सदा बनाए रखना चाहेगे। इसी प्रकार फिर किसी व्यक्ति, वस्तु वा स्थान के प्रति जब हमारे हृदय मे द्वेष ही नही रहेगा तो फिर किस वस्तु व्यक्ति या स्थान से हम पृथक् होना चाहेगे व किस को हम अपने से पृथक् करके फेकना चाहेगे। उस समय तो फिर स्थिति यह हो जायेगी कि हमारा अपने प्रति भी तब न राग रहेगा, न द्वेष रहेगा। अब जब हमारे हृदय मे अपने प्रति भी राग नही रहेगा तो फिर हमारे हृदय से यह अभिनिवेश नाम का क्लेश अर्थात् मृत्यु का भय भी सदा-सदा के लिये विदा हो जायेगा। और हम तब मस्ती मे आ कर कवि के निम्न शब्दो को गुनगुनाते लगेंगे—'न कोई है अपना, न कोई पराया, सभी है अपने, सभी पराए"। तब यदि हम प्यार करना चाहेगे तो सभी के साथ समान रूप से करेंगे, न्याय भी सब के साथ कर सकेंगे। तब हमे अपने समान दूसरो का सुख भी अपना ही सुख और दूसरो का दु ख भी अपना ही दु,ख प्रतीत होगा। तब हमे अपने समान दूसरो की सुविधा भी अपनी सुविधा लगेगी, अपने समय के समान दूसरो का समय भी मूल्यवान् ही प्रतीत होगा, तब हमे दूसरो की जान भी अपनी ही जान जैसी लगने लगेगी, दूसरो का हृदय भी अपने ही हृदय जैसा अनुभव होगा, दूसरो का घाव भी अपने घाव जैसा लगेगा, दूसरो की पीडा भी अपनी ही पीडा जैसी प्रतीत होगी। तब हम जब दूसरो को रेल मे कष्ट मे देखेंगे तो फिर अपनी भरी हुई सीट भी (भीतर के न्याय और प्रेम से) खाली-खाली सी प्रतीत होगी। और फिर

हम बडे प्यार से कहेगे कि—"भाई साहब ! आप भी बैठिये, बहिन जी ! आप भी बैठिये, मा जी ! आप भी बैठिये...... ।" यद्यपि अगले ऐसा भी कहेगे कि—"नही भाई साहब ! हम खडे ही ठीक हैं, हमारे बैठने से आपको कष्ट होगा, आपके इन नन्हे-मुन्ने बच्चो को कष्ट होगा...... ।" पर फिर भी हम कहेगे—"भाई साहब ! आप चिन्ता न करे, हमे कोई कष्ट नही होगा। बच्चे तो इसकी मा ही गोद मे ले लेगी। जब आप यहा हमारे पास बैठ जायेगे और हमारी तरह जब आपको भी कुछ सुख मिलने लगेगा, कुछ आराम मिलने लगेगा तो उस समय तो हमे सुख मिलेगा उसमे तब ये सारे कष्ट ऐसे विलीन हो जायेगे कि फिर उनका कुछ हमे पता ही नही रहेगा। हमारी तो उस अवस्था मे फिर ऐसी स्थिति होगी कि जिधर को हम चल पडेगे उधर ही हमारी राह बन जायेगी, उधर ही के सब व्यक्ति तब हमे अपने ही अपने दिखाई देने लगेगे, उधर के सब घर हमे तब अपने ही घर प्रतीत होने लगेगे, उधर की सब भूमिया (खेत-खलियान आदि) तब हमे अपनी ही सब भूमिया प्रतीत होने लगेगी, उधर की सब बेटिया-बहिने और माताए तब हमे अपनी ही बेटिया-बहिने और माताए लगेगी। हमे तब ऐसा लगेगा कि जैसे वे सब ग्राम, नगर वा जनपद आदि परिचित से हो, जैसे सभी पथ परिचित से हो, सभी गलिया मुहल्ले परिचित से हो, जैसे सभी घर परिवार के सदस्य परिचित से हो। और फिर हम उनके समीप पहुच कर ऐसा अनुभव करेगे जैसे कि वे सब लोग हमारे युग-युगान्तरो मे मानो बन्धु-बान्धव ही चले आ रहे हो। हम सचमुच तब उन मे ऐसे खो जायेगे-ऐसे एक हो जायेगे जैसे कि हम मे केवल शरीरो का तो पार्थक्य रह जायेगा पर मनो का नही। हमे तब सारा ससार ही एक प्रकार से अपना परिवार सा लगेगा और उसमे सभी व्यक्ति भी अपने भाई बहिन सखा मित्र आदि प्रतीत होने लगेगे। परन्तु यह सब कुछ होते रहने पर भी अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष आदि के हृदय से विदा हो जाने के कारण जब हम आख मूद कर बैठेगे तो तब ऐसा प्रतीत होगा जैसे कि वे सब उस हमारे परम प्यारे और सब जग से न्यारे प्राणप्रिय प्रभु मे ही कही समा गए हो। क्योकि वहा तो न फिर हमे कोई भूलता है और न ही फिर हमे किसी की याद आती है। सभी द्वन्द्व-सुख-दुख, हानि-लाभ, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, राग-द्वेष, जन्म-मरण आदि उसी मे विलीन हो जाते है। फिर तो मैं जिधर ही देखता हूँ उधर ही उधर मुझे ज्योति ही ज्योति प्रतीत होती है, द्युति ही द्युति-प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है। यत्र तत्र सर्वत्र सुख ही सुख, शान्ति ही शान्ति, आनन्द ही आनन्द अनुभव होता है। तब मै बडी दूर-दूर तक निहारता हूँ तो मुझे उसके अतिरिक्त कुछ और दिखाई ही नही देता। इसी मध्य मे जब कि मै अपने प्रियतम मे कुछ डूबा हुआ सा रहता हूँ तो मेरे इन कानो मे कही से हलकी सी यह भनक सी पड जाती है-किसी की मन्द सी ध्वनि सी सुनाई दे जाती है कि –"कहा है तेरा वह प्रियतम प्रभु ?" .. " तब मैं सहज ही झट बोल

उठता हू कि—"ओ मोले ! यह बता कि कहा नही है मेरा प्रियतम प्रभु ?" ..." सचमुच मुझे तो तब सर्वत्र वही प्रभु ही भासता है, ऐसा लगता है जैसे तब सारा ससार मेरी आखो से ओझल हो गया हो। फिर न ही हमारे समीप कोई आता है और न ही हमारे से कोई विदा होता है। कविवर रहीम के शब्दो मे तब मेरी कुछ ऐसी ही स्थिति सी हो जाती है—

प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहा समाए।
भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिर आए॥

("वैदिक रश्मिया" पृ० २६ से ३६ तक से उद्घृत)

—0—

८ अक्तूबर ४७वीं पुण्य तिथि के अवसर पर प्रेमचन्द साहित्यकारों में मजदूर

डा० भवानी लाल भारतीय

अध्यक्ष दयानन्द शोध पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ

एक प्रसग मे महान् कथाकार प्रेमचन्द ने अपनी पत्नी शिवरानी देवी से कहा- "रानी, मैं तो मजदूर हू, लिखना मेरा धर्म हैं, यही मेरी मजदूरी है, इसी मे मुझे सतोष है। प्रेमचन्द जी के सुप्रसिद जीवनी लेखक श्री मदनगोपाल ने भी स्वलिखित जीवन चरित मे उन्हे कलम का मजदूर कह कर ही सम्बोधित किया है। जिस समय हिन्दी कथा साहित्य मे देवकी नन्दन खत्री के तिलिस्मी और ऐयारी उपन्यासो ने पाठक समुदाय को एक प्रकार के विस्मय लोक मे भेज रखा था, गोपाल राम गहमरी के जासूस विभिन्न प्रकार के अपराधो की छान बीन मे मशगूल थे। तथा किशोरी लाल गोस्वामी के शृगार रस प्रधान उपन्यासो मे प्रबल पाठक वर्ग ऊब चुका था, उस समय जनता के कलाकार, भारत के वास्तविक जन जीवन के चितेरे प्रेमचन्द का आविर्भाव हिन्दी के साहित्याकाश मे हुआ। हिन्दी कथा साहित्य को रहस्य रोमाच तथा रोमानी वातावरण से मुक्त कराने का श्रेय प्रेमचन्द को ही है।

प्रेमचन्द के लिये लेखन का कार्य, मात्र जीवन यापन का एक साधना न होकर, एक पुनीत तपस्या थी, जिसके माध्यम से वे लोकहित तथा समाज का उत्थान करना चाहते थे। साहित्य मे वे आदर्श को महत्व देते थे, किन्तु जीवन की यथार्थ, कटु परिस्थितियो को झेल कर उन्होने यह अनुभव कर लिया था कि मात्र आदर्शवाद ही पर्याप्त नही है। जीवन के अन्तिम क्षणो मे अपने अन्यतम मित्र जैनेन्द्र से उन्होने कहा था - "आदर्श से काम नही चलेगा," और जब जैनेन्द्र ने बात बढानी चाही तो उन्हे रोक कर प्रेमचन्द ने कहा- "बहस न करो," और उन्होने करवट लेकर आखे मूद ली थी इस प्रकार आदर्शवाद से ही सतुष्ट न रह कर प्रेमचन्द ने यथार्थवाद की उपयोगिता को भी अपने जीवन काल मे ही स्वरकार कर लिया था। इन दोनो का सुखद समन्वय कर उन्होने एक नवीन साहित्यिक पारिभाषिक शब्द को गढा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद। वस्तुत प्रेमचन्द का सम्पूर्ण कथा साहित्य भारत के जनजीवन की एक बहुरगी झाकी है। जिसमे अधा भिखारी सूरदास है तो कृषक वर्ग का प्रतिनिधि होरी

भी औपन्यासिक पात्रो के इस वृहद् समुदाय मे जमीदार और कारिंदे, पटवारी और लम्बरदार, पण्डे और पुजारी, हिंदू, मुसलमान और ईसाई, ग्रामीण बनिये और खोंचे वाले, चमार और पासी विभिन्न वर्गों के लोग अपना वैशिष्ट्य लिये उपस्थित हैं।

प्रेमचन्द ने भारत के जन जीवन को, विशेषत निम्न और निम्न मध्य वर्ग को निकटता से देखा था। वाराणसी के निकट लमही नामक एक देहात मे उनका जन्म ३१ जुलाई १८८० को मुन्शी अजायब लाल के घर पर हुआ था जो डाकखाने मे मामूली कलर्क थे। जिस समय पिता ने असमय मे ही दुनिया से प्रस्थान किया तो उन्होने अपने बडे पुत्र धनपतराय पर, उसके अपरिपक्व सासारिक अनुभवो के बावजूद एक बडी गृहस्थी का बोझ डाल दिया था। उतका अध्ययन व्यवस्थित रूप से नही हो सका। विभिन्न आर्थिक कठिनाइयो से जूझते हुए वे शिक्षा विभाग मे अध्यापक की नौकरी प्राप्त करने मे सफल हो सके, परन्तु अपने अध्यवसाय के बल पर उन्होने बी ए. की परीक्षा भी उतीर्ण की और अध्यापक का प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरान्त वे सयुक्त प्रदेश (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के विभिन्न जिलो मे अध्यापक तथा बाद मे सब डिप्टी इन्सपैक्टर के पद पर रहे।

कथा साहित्य के प्रति प्रेमचन्द का आकर्षण विद्यार्थी काल मे ही हुआ। वे अपने एक मित्र के पिता की तम्बाकू की दुकान के पिछवाडे तम्बाकू के बोरो पर बैठ जाते और उर्दू के वृहत् उपन्यास "तिलिश्म होशरूबा" के पन्नो मे खो जाते। इसी दौरान उन्हे बकिम तथा रवीन्द्र की कथाकृतियो को भी उर्दू के माध्यम से पढने का अवसर मिला। इस प्रकार प्रेमचन्द के भीतर का सुप्त कथाकार जाग उठा और अवसर मिलने पर उसने राष्ट्रीय आन्दोलन के उष्मायुक्त वातावरण से प्रेरणा प्राप्त कर अपनी उर्दू कहानियो का जो प्रथम सकलन प्रकाशित किया, उसका नाम था "सोजे वतन"। सरकारी नौकरी मे रहते हुए प्रेमचन्द के लिये यह सम्भव नही था कि वे राष्ट्रीय भावो आप्लावित इस कथा सग्रह को अपने वास्तविक नाम से ही प्रकाशित कराते। उन्होने "नवावराय" के नाम से उर्दू फसानो की इस पुस्तक को छपाया, किंतु शासको को शीघ्र ही इस बात का पता चल गया कि क्रान्ति और विद्रोह की चिनगारिया बिखेरने वाली इस पुस्तक का लेखक और कोई नही, एक मामूली मुदर्रिस है।

शीघ्र ही प्रेमचन्द उर्दू से हिंदी मे आ गये। उनका प्रथम उपन्यास सेवा सदन पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुका था। हिन्दी पुस्तक एजेन्सी कलकता से प्रकाशित, वेश्या जीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने वाली इस कथाकृति की भूमिका सुप्रसिद्ध समालोचक प० पद्म सिंह शर्मा ने लिखी थी। प्रेमचन्द का सुधारवादी स्वर उनके भावी उपन्यासो मे क्रमश प्रस्फुटित होता गया। प्रेमाश्रम मे भारत के कृषक समुदाय की दुखस्था का तो चित्रण हुआ है, साथ ही रूस मे हुए महान् सामाजिक

परिवर्तन को लक्ष्य मे रख कर युवा किसान बलराज के द्वारा भारत के किसान वर्ग मे भी आशा की एक क्षीण ज्योति उद्दीप्त होती दिखाई गई है। प्रेमचन्द ने समाज-सुधार का केवल मौखिक आस्थान ही नही किया था, अपितु उन्होने एक विधवा शिवरानी से विवाह कर इसे क्रियान्वित भी किया। उनका उपन्यास "प्रतिज्ञा" विधवा विवाह की समस्या पर ही केन्द्रित है। उपन्यास का प्रारम्भ आर्यसमाज मदिर मे प्रस्तुत की गई विधवा विवाह समर्थक वक्तृता से होता है जिससे प्रभावित होकर नायक अमृतराय स्वयं किसी विधवा से विवाह करने की प्रतिज्ञा करता है।

प्रेमचन्द की प्रथम हिन्दी कहानी "नमक का दारोगा" १९१६ मे सरस्वती मे प्रकाशित हुई थी। उनका प्रथम हिन्दी कहानी सग्रह सप्तसरोज भी इसी बीच प्रकाशित हुआ। यद्यपि लेखन को प्रेमचन्द ने जीविका निर्वाह के साधन के साथ-साथ एक मिशन के रूप मे अपनाया था, किन्तु उनकी आर्थिक कठिनाइया कभी कम नही हुई। सरकारी नौकरी से स्वैच्छिक अवकाश लेकर वे कुछ समय तक लखनऊ से प्रकाशित होने वाली 'माधुरी" के सम्पादक रहे, अन्तत उन्होने स्वय बनारस मे सरस्वती प्रेस की स्थापना की और हस मासिक तथा जागरण साप्ताहिक का सम्पादन किया जो अनेक आर्थिक कठिनाइयो के होते हुए भी प्रकाशित होते रहे। आर्थ दुरवस्था को दूर करने के विचार से ही प्रेमचन्द एक बार चलचित्र जगत के लुभावने पन से आकृष्ठ होकर अजन्ता मूवीटोन की सेवा स्वीकार कर बम्बई भी गये, परन्तु उन्हे शीघ्र ही अनुभव हुआ कि सिनेमा का वातावरण उनके जैसे गम्भीर एव आदर्शवादी प्रकृति के साहित्यकार के लिये उपयुक्त नही है।

निर्मला नारी जीवन की दुखद गाथा के पश्चात् प्रेमचन्द का बृहद् महाकाव्य धर्मी उपन्यास रगभूमि प्रकाशित हुआ। चौगाने हस्ती के नाम से प्रेमचन्द ने इसका स्वय ही उर्दू रूपान्तर भी किया गया था। इसमे एक और ग्रामीण जीवन का परि दृश्य उपस्थित किया गया तो दूसरी ओर व्यवसायियो एव जमीदारो के शोषक रूप का भी परिचय किया गया है। अधे भिखारी सूरदास के माध्यम से लेखक ने स्वय के जीवन दर्शन को ही उपस्थित किया है—"वह खिलाडी जिसने मोर्चे पर कभी मार नही खाई, जिसने कभी कदम पीछे नही हटाया, जीता तो प्रसन्न चित रहा, हारा तो जीतने वालो से गिला नही किया, जीता तो हारने वालो पर तालिया नही बजाई। जिसने खेल मे सदैव नीति का पालन किया, कभी धाधली नही की, कभी प्रतिद्वन्द्वी पर छिप कर चोट नही की"।

यही तो प्रेमचन्द का सरल व्यक्तित्व था जिसके कारण वे समकालीन भारतीय साहित्कारो मे सम्मानित हुए और विश्व कथाकार की श्रेणी मे आये। भारतीय साहित्य

परिषद् का गठन कर उन्होंने सभी भारतीय भाषाओं के लेखकों को एक मंच पर लाने का प्रयास किया। महात्मा गांधी के आशीर्वाद तथा कन्हैया लाल मुन्शी जैसे साहित्य-कारों के सहयोग से इस कार्य में उन्हें सहायता मिली। हंस को भारतीय साहित्य परिषद् का मुख पत्र बनाया गया। शीघ्र ही प्रेमचन्द को शोषित, पीड़ित और पददलित मानव जाति के बंधु के रूप में अभिनन्दन मिला। उनकी जन्म शताब्दी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाई गई। विदेशी भाषाओं में उनकी रचनाओं के अनुवाद हुए। रूस के कथाकार मैक्सिम गोर्की के समकक्ष सम्मान उन्हें रूस में भी मिला। ४७वीं पुण्य तिथि के अवसर पर इस महान् रचनाधर्मी साहित्यकार का स्मरण प्रेरणा-दायी है।

000

राष्ट्रभाषा समस्या और राजनीति,

(डा० भगवान देव पाण्डेय)
एम०ए०, पी० एच० डी०
प्रवक्ता हिंदी—विभाग

राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय-सस्कार की जननी होती है। इससे राष्ट्रीय भावना का पोषण होता है तथा जनमानस की वृत्तियो मे तादात्मय सबंध स्थापित किया जाता है। भाषा राष्ट्र का आवश्यक तत्व हैं। भाषा से ही भौगोलिक एव सास्कृतिक जानकारी प्राप्त होती है। भाषा ने ही राजनीतिक एकता की भावना का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

भारतवर्ष मे वैदिक काल से ही राजनीतिक एकता की भावना का उल्लेख मिलता है। चक्रवर्ती सम्राट बनने की भावना राजनीतिक सगठन की परिचायिका है। यह भावना चक्रवर्ती भारत से प्रारम्भ हो कर उत्तरोत्तर विकसित होती रही। कालक्रमानुसार विभिन्न राज्य प्रणालियाँ राजनीतिक एकता मे क्रियाशील रहीं। इस एकता की प्रवृति का वास्तविक शुभारम्भ चन्द्रगुप्त मौर्य से होता है। चन्द्रगुप्त ने समस्त उत्तर भारत को एक राज्य के सत्र मे पिरो कर और उसके पौत्र अशोक ने सम्पूर्ण भारत को एक राज्य के अधीन किया जिससे कि इस राजनीतिक एकता से राष्ट्रीय एकता को बल मिला। आगे चल कर गुप्तकाल मे प्रत्येक प्रदेश साहित्य, कला, शिल्प एव भाषा की दृष्टि से स्वतंत्र होकर राजनीतिक दृष्टि से एकसघीय रूप के अधीन एक राष्ट्रीय सस्कृति का विकास हुआ। हर्षवर्द्धन ने उत्तर भारत मे शासन स्थापित करके देश को एक सूत्र मे बाध रखा। हर्ष के बाद देश मे कई सदियो तक राजनीतिक विघटन की भावना प्रवल रही फिर भी अनेक आचार्यो एव मनीषियो मे धार्मिक एव सास्कृतिक दृष्टि से भारतीय एकता को स्थापित रखा। मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण से लेकर दसवी शताब्दी के अन्त तक का भारतीय राजनीतिक इतिहास अधकार पूर्ण रहा है। मुस्लिम आक्रमण एव सल्तनत की स्थापना के बाद से भारतीय इतिहास मे राजनीतिक गठन का युग प्रारम्भ होता है। बाद मे मुगल साम्राज्य के शासनकाल मे हमारे देश मे राजनीतिक गठन के साथ सास्कृतिक पुनरुत्थान काल का प्रादुर्भाव हुआ। आगे चल कर अग्रेजो के शासनारुढ हो जाने के बाद उनके द्वारा फैलाई गई दुर्भावना से प्रतिक्रियात्मक रूप से राष्ट्रीयता की भावना

विशेष बलवती हुई। स्वतन्त्रता की प्रबल भावना ने सम्पूर्ण देश को एकता के सूत्र मे सगठित होने की इच्छा जागृत की।

समय समय पर इस देश मे विभिन्न जातियो के लोगो ने पदार्पण किया पर वे भारतीय सस्कृति के साथ इस प्रकार एकाकार हो गये कि उन्हे अलग से पहचानना भी कठिन हो गया। वही देश सास्कृतिक दृष्टि से उन्नत एव शक्तिशाली होता है जो अनेकानेक संस्कृतियो को आत्मसात् कर ले। भारत इनमे प्रमुख है। भारतीयो की संस्कृति, जीवन के प्रति दृष्टिकोण एव समस्या समाधान का एक ढग है। राजनीतिक दृष्टि से यहा के शासन-प्रबध मे अनेक परिवर्तन हुए पर लोक-जीवन की आन्तरिक एकरूपता सर्वदा कायम रही। भारत की भाषा सबधी ऐतिहासिक परम्परा की ओर दृष्टि डालने से यही निष्कर्ष निकलता है कि सस्कृत सभी भारतीय भाषाओ की पोषक है इसीलिये यहा की भिन्न-भिन्न भाषाओ के भीतर बहने वाली भाव धारा एक है। भारत की राष्ट्रीयता के सबध मे डॉ० रामविलास शर्मा का कथन बिल्कुल सत्य है :-

"हमारी राष्ट्रीयता केवल अग्रेजो का विरोध करने के लिये नाकारत्मक रूप से किन्ही विशेष परिस्थितियो मे उत्पन्न नही हो गयी। उसकी जडे हमारी ऐतिहासिक और आर्थिक परम्पराओ मे बहुत गहरी पैठी हुई है।" (राष्ट्र भाषा की समस्या पृ० १८०)।

राष्ट्र भाषा का प्रश्न आरम्भ से ही राजनीतिक चालो मे फंस कर रह गया। साहित्य सत्य की अभिव्यक्ति है। हिन्दी आरम्भ से ही इस सत्य को प्रकट करती आई है। स्वाधीनता सग्राम मे हिन्दी, उसके पत्र एव पत्रकारो, साहित्यकारो ने अग्रणी रह कर जिस प्रकार का योगदान किया था, इतिहास इसे भुला नही सकता। आजादी से पूर्व यह भाषा एक सस्कार ही नही, अपितु सघर्ष को जारी रखने का प्रमुख अस्त्र थी और बाद मे चल कर वह राजनीतिक हथकण्डो, प्रान्तीय क्षुद्रताओ और आपसी द्वेष के कारण उपेक्षित सी पडी हुई है।

हमारे देश मे राष्ट्र-भाषा हिन्दी की समस्या एक ज्वलत समस्या है। राष्ट्र-भाषा का पद मिलने के ३५ वर्षों बाद भी आज हिन्दी की स्थिति शोचनीय है। राष्ट्र-भाषा होते हुए भी वह सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा नही बन सकी है। जहा पर छोटे-छोटे देश मृतप्राय अपनी-अपनी भाषा को लेकर उठ खडे हुए है और सारा काम-काज अपनी राष्ट्र भाषा मे चलाते हैं, वही यह एक ऐसी विडम्बना है कि भारत अभी तक ऐसा नही रह सका है। सरकारी स्तर पर इसको सर्वभाषा बनाने के लिये कुछ कदम उठाये भी गये लेकिन आज भी वह सरकारी काम-काज मे उपेक्षित सी ही है। राष्ट्रभाषा

होते हुए भी क्षेत्रीय भाषायें अपने क्षेत्रो मे उससे कही अधिक लोकप्रिय हैं और राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी का वर्चस्व यथावत् बना हुआ है। राष्ट्रभाषा हिन्दी पर अंग्रेजी इस प्रकार "हावी" हो गयी है कि यहां के लोग अंग्रेजी को ही हिन्दी समझने लगे हैं।

आज का समाज दैनिक बोलचाल मे आधे से अधिक अंग्रेजी शब्दो का प्रयोग करना गर्व की बात समझता है। आज के शिक्षित लोगो मे यह गलतफहमी घर कर चुकी है कि अंग्रेजी सभ्यो की भाषा है और हिन्दी गवारो की। अपने हृदय मे राष्ट्र-भाषा के प्रति श्रद्धा रखकर ही अंग्रेजी भाषा का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करना उचित कहा जा सकता है। लेकिन लगता है कि हजारों वर्षों की गुलामी ने हमारे हृदय मे राष्ट्रीयता की भावना को ही धूमिल कर दिया है। आज भी हम मानसिक दासता से मुक्त नही हुए है।

हिन्दी शासन नियत्रको एव राजनेताओ के चुगल मे फस कर विवश हो गयी है। अंग्रेजी केवल थोडे से आभिजात्य वर्ग के सम्पर्क की भाषा है और वही तक सीमित रहेगी। यह वर्ग जो राष्ट्र का नियत्रक है, अंग्रेजी के प्रभाव को समाप्त होता हुआ नही सहन कर सकता क्योकि अंग्रेजी के प्रभाव मे ही उनका प्रभाव निश्चित है। ऐसे ही अल्प एव अल्पज्ञ लोग यह कहते है कि हिन्दी अभी समृद्ध भाषा नही हो पायी है। राष्ट्रभाषा का नुकसान राजनीतिज्ञ भी कर रहे है, क्योकि ये राजनेता सदैव भाषा को ही चोट की राजनीति बनाते आ रहे है। यही कारण है कि भाषा-विवाद को ले कर देश मे जब तब आन्दोलन हुए है। स्वतत्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक १५ वर्षों तक ही सविधान मे अंग्रेजी को छूट थी। उसके बाद यह निश्चित था कि हिन्दी स्वय देश की भाषा बन जायेगी और सभी सरकारी, गैर सरकारी कार्यों मे प्रमुख रूप से हिन्दी का प्रयोग किया जायेगा। पर अब स्थिति यह है कि अब यह कहा जा रहा है कि हिन्दी किसी पर थोपी नही जायेगी और सच्चाई यह है कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी होते हुए भी हिन्दी को न तो वह स्वरूप ही प्रदान किया गया और न ही राष्ट्रभाषा के रूप मे वह सम्मान मिला जोकि एक राष्ट्र-भाषा को मिलना चाहिए। इसके बदले मे आज प्रत्येक हिन्दी भाषी नागरिक पर अंग्रेजी थोपी जा रही है।

भाषा विचाराभिव्यक्ति का साधन मात्र ही नही अपितु वह शक्ति है जिस के माध्यम से राष्ट्र विश्व के मानचित्र पर अपनी गरिमा प्रतिष्ठित करता है। विदेशी भाषा का मोह एव उसकी प्राथमिकता, शब्द-भण्डार की समस्या, व्याकरण की जटिलता, भाषा को साहित्य के साथ मिलाकर देखने की प्रवृत्ति और उसके क्लिष्टता का एहसास आदि ऐसे मिथ्या दोषारोपण है जिसके कारण ही राष्ट्र भाषा हिंदी का अनादर हो रहा है। ये जितनी समस्याये दिखायी जाती है वे हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी मे

सबसे अधिक है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी सबसे अधिक अवैज्ञानिक है, जब कि हिंदी बहुत अधिक वैज्ञानिक। अगर हिंदी मे अत्यधिक कमिया हैं और वह अग्राह्य है तो चेकोस्लावाकियाई विद्वान् द्वारा भारतीय प्रधान मत्री को प्रस्तुत किया गया उनका हिंदी-काव्य-ग्रन्थ किसका परिचायक है।

राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर जितना विवाद और सघर्ष हमारे देश मे हो रहा है उतना किसी भी देश मे देखा नही गया। विश्व के अन्य समृद्ध देशो ने भाषा भेद के कारण राष्ट्रीय एकता पर किसी प्रकार का सकट नही आने दिया। सोवियत सघ मे प्रत्येक प्रात का गठन ही भाषा के आधार पर हुआ है पर वहा की राष्ट्र भाषा रूसी है। इस्रायल ने मृतप्राय; भाषा "हिब्रू" को अपना कर उसे नया जीवन प्रदान किया है। क्या ये आदर्श हमारे सामने नही हैं? आज राष्ट्र भाषा के रूप मे हिंदी की जो दुर्गति हो रही है वह स्पष्ट है। सरकारी कागजो मे भले ही हिंदी राष्ट्र एव राज भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो पर व्यवहार मे आज भी अंग्रेजी भाषा का आधिपत्य है। अंग्रेजो के प्रभुत्व ने हिन्दुतान की ही नही, हिंदी को भी पददलित किया है। वर्षो के अंग्रेजी शासन की दासता ने "शिक्षित नौकर" उत्पन्न करके हिंदी-भाषा को इस सीमा तक घायल कर दिया है कि उसकी सिसकन आज भी नही गई है, जिसके परिणाम स्वरूप हम पर अंग्रेजियत का नशा छाया हुआ है। अंग्रेजो ने अपने शासन काल मे जितना शोषण, दोहन किया है अंग्रेजी उससे भी अधिक अपनी क्रूरता की अमिट छाप छोडेगी। हिंदी को राष्ट्र-भाषा का पद इसलिये दिया गया कि हिंदी जानने एव बोलने वालो की सख्या अन्यो की अपेक्षा अधिक है। हिंदी-भाषा ही एक मात्र भाषा है जो सम्पूर्ण राष्ट्र की एकता के सूत्र मे बाध सकती है। इस बात का समर्थन सभी स्वतत्रता सग्राम सेनानियो ने भी किया था। दूसरी बात यह थी कि हिंदी-भाषियों की सख्या अधिक होने से कम से कम व्यक्तियो को हिंदी सीखनी पडेगी पर यह आज तक अपने पद को नही पा सकी।

हिंदी आरम्भ से ही विवाद का विषय रही है। प्राय, इसकी समृद्धि पर प्रश्न चिह्न लगाया जाता है। पर यह सत्य है कि स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद हिंदी मे उल्लेखनीय साहित्य का सृजन हुआ है। रचनात्मक विधाओ मे हिंदी साहित्य बहुत प्रगति कर रहा है। कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता आदि के क्षेत्र मे हमारी उपलब्धिया महत्त्वपूर्ण है। फिर भी हिंदी भाषियो मे बहुत कुछ कमिया हैं। न तो हम मे अपनी भाषा के प्रति आस्था है और न अपने साहित्य के बहुमुखी विकास के लिये प्रतिबद्धता। अत आवश्यकता इस बात की है कि अपने साहित्य के प्रति आत्मश्रद्धा उत्पन्न की जाये।

साहित्य समाज का दर्पण होता है और साहित्यकार समाज के सजग प्रहरी। रचनायें शून्य से नही निकलती बल्कि उसमे कृतिकार के प्राणों का उभार होता है। इस बात को प्रत्येक काल के साहित्य मे देखा जा सकता है। हिंदी साहित्य के विकास के लिये हिंदी-भाषी प्रदेश के लोगों को अपनी भाषा के प्रति अपेक्षित स्वाभिमान जगाना होगा। हिंदी के एक राष्ट्रीय रगमच की परिकल्पना को साकार करने की दिशा मे अनुवादो के माध्यम से भी बहुत महत्वपूर्ण काम किया जा रहा है। आरम्भ मे रगमंच के माध्यम से हिंदी का प्रचार प्रसार किया गया लेकिन आगे चल कर यह भी व्यावसायिक बन गया। इसमे बहुत से अहिंदी भाषी निर्देशक घुस आये जो हिंदी प्रदेश की सास्कृतिक सवेदना और भाषा की विशिष्ट प्रभावकारी अभिव्यजनाओ से अपरिचित रहे हैं जिसके कारण उनकी नाट्यरचनाओ मे सौन्दर्य मूलकता अथवा शिल्पगत निपुणता के बावजूद, एक प्रकार का अजनबीपन, अभिजात अलगाव और अग्रेजियत को ही असली आधुनिकता या अभिजात्य समझते है, इसलिये अपने कार्यों मे उसकी कुछ निशानी और अपनी कुछ अलग पहचान बनाये रखना चाहते हैं। यहा यह स्पष्ट है कि ये लोग हिंदी का व्यावसायिक प्रयोग करते है। इस भाषा से न तो कोई लगाव है और न उसके प्रति कोई सम्मान।

साहित्य सामाजिक उत्पादन है और साहित्यकार सामाजिक प्राणी। हम साहित्य के माध्यम से ही समाज का चित्रण करते है। अत: इस सम्बध मे हमारा उत्तरदायित्व कम महत्वपूर्ण नही होता। उत्तरदायित्व का निर्वाह न करने से हम साहित्यिक प्रगति के बाधको से कम दोषी नही है। आज न हमारी शिक्षा व्यवस्था साहित्यिक सस्कारो के विकास की ओर ध्यान दे रही है और न राज्य की ओर से ही कोई सुनियोजित सास्कृतिक नीति ही कार्यन्वित की जा रही है। शिक्षको की अज्ञानता भी इन कारणो मे जुडी हुई है। शिक्षको की अज्ञानता के कारण ही महाविद्यालयो के पुस्तकालयो मे या तो स्तरहीन पुस्तके मिलती है याँ मिलती ही नही। यही स्थिति सरकारी सस्थानो के पुस्तकालयो की भी है जिसके फलस्वरूप इन पुस्तकालयो के माध्यम मे हिंदी साहित्य के सम्पर्क मे आने वाले लोग हिंदी साहित्य के सही परिदृश्य से परिचित नही हो पाते।

प्रकाशको की व्यावसायिक वृत्ति भी कम उत्तरदायी नही है। ये अच्छी एव सामान्य पाठको को दृष्टि मे रखकर अपना प्रकाशन नही करते बल्कि विद्यालयो, विश्वविद्यालयो एव सरकारी सस्थानो के पुस्तकालयो को ध्यान मे रखते हुए पुस्तके प्रकाशित करते है। इसके लिए साहित्यकारो को भी दोषी ठहराया जा सकता, क्योकि ये भी अपने को व्यावसायिक बना चुके है।

हिंदी भाषियों की सहिष्णुता भी हिंदी को उपेक्षित बना देती है। हिंदी के सदर्भ मे निरन्तर होते हुए भी कुछ अंग्रेजी दा हिंदी साहित्य पर प्रहार करते रहते हैं क्योकि वे जानते हैं कि हिंदी वाले विरोध नही करेंगे। हिंदी साहित्यकार सहिष्णु है और वह नही चाहता कि अल्प भाषा भाषाओ के मन मे कोई भ्रम उत्पन्न हो।

इस प्रकार अंग्रेजी शासनकाल से ही हिंदी जिस विष के घूट को पीती आई है वह जहर उसे राजनीति ढंग से आज भी पीने को मिल रहा है फिर भी इसके लेखन मे निरंतर वृद्धि हो रही है। हमे आजादी के बाद राजनीतिक, सामाजिक और वैदिक जीवन मे अंग्रेजी का जो वर्चस्व बना हुआ है, और जिसकी जकड से भारतीय सृजन-शीलता मुक्त नही है, से ऊपर उठकर हिंदी के समुचित विकास मे लगे रहना चाहिये। इसकी दुरूहता एव क्लिष्टता का परिमार्जन करके सरल ढग से जनप्रिय बनाने का प्रयत्न करना चाहिये और समुचित शब्दो को ग्रहण करके उसके स्वरूप के सबध मे पुनर्विचार आवश्यक है। हमारी भारतीय-संस्कृति प्राचीन काल से ही निंदा का विषपान करती हुई चली आ रही है पर आज भी वह मृत्युजय बनी हुई है। हिंदी का भी भविष्य भारतीय संस्कृति की तरह कालजयी बनेगा।

०००

हिन्दी साहित्य को संत कवि प्राणनाथ का प्रदेय

ले० डा० (श्रीमती) मंजुलता गहलौत
एम० ए०, पी-एच० डी०
व्याख्याता—हिंदी-विभाग
सागर विश्वविद्यालय (मध्य प्रदेश)

प्रणामी सम्प्रदाय का प्रारभ सवत् १६८० से माना गया है, किंतु इस सम्प्रदाय के पक्षधर प्रणेता सत कवि श्री प्राणनाथ ही रहे हैं। इनसे पूर्व गुरु देवचद ने भी अपनी रचना "तारतम्य वाणी" लिखकर इस संप्रदाय का प्रादुर्भाव करने मे योगदान दिया। स्वामी प्राणनाथ की हिंदी के प्रणामी सम्प्रदाय की महत्वपूर्ण देन निरतर अन्वेषण करने योग्य है।

स्वामी प्राणनाथ की जोशवाणी एवं होशवाणी :

प्राणनाथ ने अपनी कृति 'रास' मे मायामोह से मुक्त होकर देवीयशरण मे जाने को ही श्रेष्ठतम निरूपित किया है। बालक्रीडा, रासलीला, रासमडल, अन्तर्ध्यानिलीला, भोग आदि द्वारा आत्मविस्मृति एव आत्मस्वरूप का ज्ञान पाना ही इस कृति मे कवि का मूल प्रतिपाद्य विषय रहा है।

'प्रकाश' नामक रचना गुजराती मे रची गई है। इसमे भी सासारिक माया के आवरण से आच्छादित आत्माओ को आत्मजागृति का सदेश देना कवि का मूल लक्ष्य रहा है। ब्रह्मागनाओं की तामसी प्रवृत्ति की ओर सकेत करते हुए कवि उन्हे जाग्रत होकर तम से प्रकाश की ओर जाने का सकेत करते है .—

"धनी जाए जगावती, कहे कहे अनेक सनध।
नीदे सब भुलाइया, सेवा या सनमध ॥

इसमें "कातनी का दृष्टांत" नामक प्रकरण अत्यन्त पठनीय बन गया है। "लक्ष्मी जी का दृष्टांत," 'शुकदेव महिमा,' 'बेहद वाणी,' 'प्रगटवाणी' आदि प्रकरण भी इसी से जुड़े हुए अंश हैं। गांधीजी पर इनका गहन प्रभाव पडा था।

'षटऋतु' नामक कृति मे ईश्वर वियुक्त आत्मा हर ऋतु में पूर्वानुभूत सुखों की सुखद स्मृति उद्दीप्त होकर विरहाग्नि मे अपने दुर्गुणों का अवसान करते हुए विशुद्ध मानस से यही कहती है, कि - (हे प्रिय ! अखंड परधाम में तो तुम्हारे मिलन का आनंद सदैव अनुभव किया लेकिन इस मायाजगत मे वैसा सुख दुर्लभ है। अत: आप दर्शन देकर विरह पीड़ा शात करो।")

मारी वहेली ने लेजो सार, वाला जीनी हूं विरहणी रे
मुने दिवस दोहेला जाए, वसेके रेणी रे
इन्द्रावती कहे अवगुण बिसारो अमहणां रे।

कलशे नामक रचना मे प्रणामी सम्प्रदाय के दार्शनिक पक्ष का प्रतिपादन हुआ है। ब्रह्मणी खोज, जगत, विविध धर्ममत, वेदोक्त कर्मसाधना, पुरुष प्रकृति, अवतार मीमासा, श्रीकृष्ण त्रिधालीला आदि तत्वो का विश्लेषण यहा हुआ है। ब्रह्माण्ड वर्णन, प्रेममार्ग, माया का स्वरूप, विशिष्ट आत्म विवेचन, गोकुललीला, जागनीलीला आदि घटना प्रसग वर्णित करते हुए यहा भी कवि प्राणनाथजी ने माया से बचने का उपाय ब्रह्मोपासना ही माना है।

उदा०—

'लगोगे जो दुख को तो दुःख तुमको लागसी।
याद करो निजसुख, तो दुःख पीछे भागसी।।'

'सनघ' नामक कृति मे कवि ने - श्रीमद्‌भागवत के माध्यम से 'कुरान' (इस्लामी' ग्रथ) की ही नवीन व्याख्या कर दी है। इसमे उन्होने बताया है कि समस्त धर्मों का मूलोद्देश्य एकमेव होते हुए भी भाषा वैविध्य आड़े आता है। इसी कारण पद्धस्पर छद की दशा प्रादुर्भूत होती है—

'हकीकते फुरमान की, कहूं सुनो सबमिल
नूर अकल आगे ल्याए के, साफ करू तुमदिल।'

उन्होने 'प्रेमभक्ति' को सब धर्मों का प्राणतत्व माना है। वे लिखते भी हैं—

'मैं देखे सब खेल मे, पंथ पैंडे, दरसन,
देखी इस्क बदगी सबकी, जैसा आकीन सबन।'

पं० मिश्रीलाल शास्त्री के अनुसार 'सनंध' नामक ग्रंथ तत्कालीन धार्मिक नीति का एक ज्वलंत प्रतीक है। इस ग्रंथ में वर्णित विषय जहा दोनो धर्मों के बीच प्रचलित मिथ्याडम्बरों का खंडन करता है वहा धर्मों के बीच उत्पन्न होने वाले विषयवाद को नेस्तनाबूद करके धार्मिक भावना के बीच आध्यात्मिक सामजस्य के पवित्र सोपान का निर्माण भी करता है।

'कीरंतन' (कीर्तन) नामक रचना मे कवि के भ्रमण के दौरान रचे गए पदो का संग्रह है। इसमे अनेक राग-रागनी वेदात तत्व, सद्गुरु चर्चा एव सच्चे मानव की पहचान के सदेशमूलक सिद्धान्त वर्णित हुए हैं।

'खुलासा' नामक रचना मे स्वामी प्राणनाथ ने कुरान (जिसे वे 'खुदा का फरमान=आज्ञा पत्र' मानते थे) की व्याख्या करते हुए सासारिक धर्म-वैमनस्य का प्रतिकार चाहा है।

'खिलवत' नामक कृति मे प्रेमी-प्रेमिका के सवाद वर्णित है। अहमाव का दमन, ब्रह्मज्ञान की महिमा, ब्रह्मसृष्टि (उत्तम जीव) का सृष्टि मे अवतीर्ण होने का कारण इत्यादि बातो का इसमे समावेश हुआ है। 'परमधाम' की कल्पना यहा कवि ने की है। वे लिखते हैं—

'साकी पिलावे शराब, कहे प्याले लीजिये।
हक इश्क आ आब, भर-भर प्याले पीजिए॥'

'परकरमा' (परिक्रमा) नामक रचना मे आत्मा के परधाम मे विचरण का जागतिक रूप मे वर्णन हुआ है। कवि के अनुसार बल, बुद्धि, जोश, ज्ञान आदि 'प्रेम' के सयोग से ही वहा पहुँच सकते हैं। वे कहते हैं—

'पथ होवे कोट कलप, प्रेम पहुचावे मिनेपलक।'
अब आओ रे इश्क मानुहाम, देखू वतन अपना निज धाम।
करू चरण तले विश्राम, विलसू पियोजी सो प्रेमनाम॥'

इस प्रकार 'परमधाम' पक्ष के अर्तगत रगमहल, फूलबाग, महानवन, यमुना के सप्ततीर, अक्षरधाम, सुधासरोवर, जवाहिरो की नहरें और महल, चारहार-हवेली, माणिक पहाड, आठ सागर एव आठ भूखण्ड वर्णित हुए हैं। परमधाम के परमसौंदर्य को दर्शाते हुए प्रेमियो के अपूर्व प्रेम का परिचय भी कवि ने दिया है। प्रेममयी ब्रह्मसृष्टि ही ही 'परमधाम' मे अवस्थित होने की अधिकारी है।

'सागर' नामक कृति मे भी कवि ने उक्त अष्टसागरों को ही व्यक्त बनाकर पूर्णब्रह्म सच्चिदानंद के अप्राकृत गुण और उसकी असीमता का वर्णन करते हुए अलौकिक दिव्यता का वर्णन किया है। 'नूरसागर' का मूलस्थान मे, 'क्षीर-क्षीर' सागर का सखियो की शोभा और ऐक्य मे, 'दधिसिंधु' का राधाकृष्ण के सौंदर्य में, 'मधुसिंधु' का प्रेम मे, घृतसमुद्र का ब्रह्मविद्या में, 'रससागर' का ब्रह्मात्माओं में तथा सर्बरस सागर का कृष्ण की दया मे निवासित बताया गया है।

'सिनगार' (शृंगार) नामक कृति मे आत्मा के समक्ष सच्चिदानन्द परब्रह्म नखशिखात-शृंगार और अंग प्रत्यगों का सौंदर्य, वस्त्रालंकारो की आभा, प्रेमप्रीत कृपाकोमलता, कला-कौशल्य, नीति, बल विद्वता आदि का वर्णन हुआ है।

परब्रह्म के नख की अपूर्व शोभा का ही गुणगान करते हुए कवि लिखते हैं—

'सखी री। तेज भरो आकाश मे, नख जो तनिक सीधी।
ज्यो सागर छूँदत आवत, नहरें निर्मल का तीर॥'

'सिंधी' नामक रचना मे विरही आत्मा की मिलनोत्कण्ठा का वर्णन है। विनती, फरियाद, न्याय आदि इसके विभिन्न प्रसग है।

'मारफत सागर' नामक कृति मे भी सरियत के बधनो मे जकड़े कुरान के धार्मिक सिद्धान्तो का आध्यात्मिक विश्लेषण हुआ है। मशरक और मगरब सूरज, आजूज-माजूज, दाफ तुल अरज, दजाल जैसे प्रसग इसमे भी आए हैं। 'मारफत' आत्मा की मुक्त दशा को ही कहा गया है। धैक्य की भावना का प्रसार ही इस कृति का प्रमुख सदेश है। खिलवत की बातें, तारतम, फिरके, कयामत के सात निशान, छ: दिन की पैदाइश आदि बातें इस कृति मे विस्तार पूर्वक वर्णित हुई हैं, तभी से ब्रह्म ज्ञान का सकेत पैगबर, अवतार आदि देते चले आए है—

'जमाना खाली नही, बिना महमदी कोय।
करत सबनमें रोशन, चिराग नबी की सोय॥'

'कयामत नामा' नामक रचना मे कवि प्राणनाथजी ने आत्म जागृति, पैगम्बरी आदि बातो पर प्रकाश डाला है। उपदेश वाणी सुन कर भी यदि आत्मा नहीं जागती हो वह मोमिन है—

'यो इल्म समभावते, जो कोई न समभत।
तिन भजाजी दिल को, जिन करो नसीहत ॥'

इस रचना में श्याम मेहदी और बुद्धावतार की भी चर्चा है। इनके अतिरिक्त प्राणनाथ की होशवाणी के ग्रंथों 'कुरान के जवाब सवाल', 'मेखमीराजी का सवाद', तीसरा कयामत नामा', 'कुरान की पत्रिकाए', 'जामिल मारफत', 'छत्रसाल प्रबोध' आदि में मुख्यत. सर्वधर्म ऐक्य का ही निरूपण किया है। इनकी अनेक रचनाए अनुपलब्ध भी हैं। फिर भी प्रणामी सप्रदाय को सर्वमहत्वपूर्ण प्रदेय सत कवि प्राणनाथजी का ही रहा है।

— 0 —

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन एक श्रद्धांजलि

ले०—सन्तोष कुमार एम० ए० पूर्व छात्र

राष्ट्रभाषा हिंदी के परम पुजारियों में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन का नाम बड आदर के साथ लिया जाता है और उनकी श्रद्धाजलि के रूप मे आज का हिंदी-समाज समय-समय पर अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिये किसी न किसी प्रकार के आयोजन करता ही रहता है। अत; इतने बडे समाज मे जिस महापुरुष का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप मे स्मृति-दिवस मनाया जाता हो भला उस महापुरुष का व्यक्तित्व एवं कृतित्व कितना महान् होगा ?

श्रद्धेय टण्डन जी हिंदी समाज के अग्रगण्य नेता थे। वे अपने समाज का नेतृत्व करने वाले महानायक के रूप मे प्रतिभासित होते थे। एक महानायक के लिए जो गुण परमावश्यक होने हैं, वे सब टण्डन जी मे प्रचुर मात्रा मे विद्यमान थे। वे अनन्य देश सेवी, कर्मठ और वीर थे। वे अपनी लगन पर अपने को मिटा देना भली भाति जानते थे। वे मार्ग पर चलते हुए विघ्न बाधाओ की रचमात्र भी चिंता नही करते थे। उन्होने बडी निर्भीकता के साथ अपने व्रत का पालन किया और अपने आपको सदा के लिए अमर बना लिया।

टण्डन जी ने हिंदी भाषा और साहित्य की अमर सेवाए की। हिंदी भाषा और साहित्य के उत्थान तथा विकास मे उन्होने अपने आपको मिटा दिया। उनके समय हिंदी भाषा उपेक्षणीय होने के साथ-साथ अपभिजित थी। उसमे भावों की अभिव्यक्ति की कुशलता नहीं थी। इन सभी कमियों को दूर करते हुए उन्होने हिंदी भाषा को परिनिष्ठित रूप प्रदान किया। उन्होंने हिंदी भाषा को पहचाना और अनुभव किया कि भारत की राष्ट्रीयता के विकास का बीज हिंदी भाषा के अभ्युत्थान मे ही निहित है। अत' वे प्राण-पण से हिंदी भाषा के उत्थान मे लग गये। उन्होंने परिस्थितियों से युद्ध करके हिंदी भाषा को उन्नति को और अग्रसर किया, उन्होने एक सच्चे व्रती और साधक की भांति ही अपने जीवन के एक-एक क्षण को हिंदी भाषा के शृंगार में लगाया। उन्होंने एक महानायक की भाति ही उन सम्पूर्ण परिस्थितियों को पीछे ढकेला

जो हिंदी भाषा के विकास के मार्ग में रोड़े का काम कर रही थी। उन्हीं के प्रयत्नों से हिंदी भाषा पुष्ट और सबल बनकर उन्नति के क्षेत्र की ओर गति के साथ अग्रसर हो रही है। हिंदी भाषा के विकास एवं संवर्द्धन के लिए टंडन जी ने एक सामूहिक शक्ति उत्पन्न की थी। इसी के परिणाम स्वरूप आज हिंदी भाषा सम्पूर्ण देश में पल्लवित और पुष्पित होकर भाव-सौरभ से युक्त हो रही है। देश और समाज की उन्नति प्रगति के लिए राजर्षि टण्डन निरंतर विरोधी-दलों से युद्ध करते रहे। हिंदी के लिये उन्होंने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया था। उनके आदर्शों का पालन करते हुए उनकी कल्पनाओं को साकार रूप प्रदान करना ही उनकी सबसे बडी श्रद्धांजलि होगी।

हम भारतीय हैं अतः भारतीय संस्कृति की अमर ज्योति जलाने के लिये पारस्परिक मतभेद को मिटा कर हिंदी की सेवा मे अपना हाथ बटायें तभी हमारे विचार एवं संस्कृति अटल रूप मे ठहर सकते हैं। राजर्षि टण्डन ने हिंदी सेवाव्रत को अपनाया था। वे सभी प्रकार के प्रलोभनों को छोड कर आजीवन हिंदी के लिए संघर्ष करते रहे। उनका कहना था कि सम्पूर्ण देश की एक ही भाषा है और वह है हिंदी। टण्डन जी ने अकेले ही हिंदी को इतना ऊंचा उठा दिया कि वह अब एक वट-वृक्ष के समान फल फूल रही है परन्तु हमे सदैव सतर्क रहना चाहिये और हिंदी के महत्व को समझते रहना चाहिए तभी हम अपने सच्चे मार्ग पर निष्कटक रूप से पहुंच सकते हैं।

आज कुछ स्वार्थ प्रेरित नीतिज्ञ जन हिंदी के प्रचार प्रसार मे बाधा पहुँचा रहे हैं। उन्होंने अपने पूर्वजों के आदर्शों एवं अपनी निजी स्वतन्त्रता की बलि चढा दी है। इन लोगो द्वारा उत्पन्न की गई स्थिति बडी दुर्भाग्य पूर्ण है। इन लोगो के बहकावे मे आकर हम लोगो ने अपने मन-मन्दिर के टिमटिमाते दीपको को बुझा दिया है। अंधेरे मे जो कुछ मिल रहा है उसे बिना सोचे विचारे अपनाते चले जाते है और इसका दुष्परिणाम हमारे समाज मे प्रगट होता जा रहा है और हम देखते है कि हम अपनी भाषा और संस्कृति से दूर हो रहे हैं। हमे अपनी भाषा पर गर्व होना चाहिए। कुछ लोगों का कहना है कि भारत मे राष्ट्र की वाणी नही है उसमे अपने विचारो की अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति नही है। यह कहना अपनी मातृभाषा का अपमान करना है। जैसे हम अपनी मां का अपमान नही सहन कर सकते वैसे ही हम अपनी राष्ट्रभाषा हिंदी का अपमान भी सहन नहीं कर सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों को हमे मुंह तोड जवाब देना चाहिये। हमें अपनी भावनाओं को जगाना होगा तभी हिंदी का उन्नयन-प्रचलन होगा।

राजर्षि टण्डन का व्यक्तित्व अनोखा था। वे अपने जीवन मे जो निश्चित कर लेते थे उसे करके मानते थे एवं अपने निश्चित किये हुए विचारों मे अडिग रहते थे।

वह महात्मा गांधी को भी अपना विरोध बताने में तनिक भी नहीं झिझकते थे। वे महात्मा गांधी का सम्मान करते थे। परन्तु वे स्वावलम्बी थे। टण्डन जी परिष्कृत हिंदी तथा अखण्ड भारत के पक्षधर थे। वे हिंदी के प्राण-स्वरूप थे। हिंदी भाषा सरल है। इसमें तकनीकी विषयों का भी अध्ययन-अध्यापन होने लगा है। अनेक विद्वानों ने टण्डन की के संस्मरणों को लिखा है जिनमें सभी का मुख्य लक्ष्य रहा है कि हिंदी उनके लिए एक जीवन-श्रद्धा रही है। राष्ट्रीय जीवन के जितने भी आदर्श या महत्त्वपूर्ण मूल्य थे उन्हें राजर्षि जी हिंदी में समाहित देखते थे। उन्होंने हिंदी को राष्ट्रीय मुक्ति देने के लिये एक शस्त्र रूप में प्रयोग किया परन्तु आज हम उसे भूलते ही चले जा रहे हैं। हिंदी के प्रति जो षड्यंत्र रचे जा रहे हैं वे हिंदी की शक्ति के बिखराव के लिये ही हैं। इसलिए हमें सचेत होकर हिंदी को सबल बनाने के लिए नैतिक दायित्व को अपनाना होगा। हिंदी के लिये लड़ना वास्तव में पूरे देश की अस्मिता, प्रतिष्ठा के लिये लड़ना होगा। यदि हम हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में पूर्ण सम्मान दिला सकें तो राजर्षि टण्डन के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। हिंदी-आन्दोलन हमारे जीवन का अंग बन चुका है। अपने देश को परम्परा तथा अन्य भाषाओं और जनपदीय बोलियों से बहुत कुछ लेकर हिंदी ने शक्ति अर्जित की है। सामान्य जन के जीवन्त सांस्कृतिक व्यापार तथा उनकी रगों के स्पन्दन को लेकर क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता, जातिवाद आदि के सकुचित दायरे को तोड़ कर हिंदी ने एक विशाल नागरिकता का बोध कराया है तथा हमारी राष्ट्रीयता की भावना को बल प्रदान करके राष्ट्रीय जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। आज भी राष्ट्रीय एकता के लिए हिंदी का समर्थन होना अत्यन्त आवश्यक है।

टण्डन जी की विचारधारा तत्कालीन नेताओं की विचारधारा से भिन्न थी। दूसरे नेताओं ने भारत की विविधता में एकता का दर्शन किया। उसी समय टण्डन जी ने एकता में सारी विविधताओं को विलीन पाया। वह कथनी और करनी में सामजस्य रखने वाले कर्मठ व्यक्ति थे। वे सच्चे अर्थों में भारतीय प्रतीक थे। आज के युग में टण्डन जी जैसा निस्वार्थ राजनीतिज्ञ तथा समाज-सेवी मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। टण्डन जी की बदौलत सम्पूर्ण भारत में हिंदी का प्रचार प्रसार हो सका। टण्डन जी राष्ट्रभाषा हिंदी को विश्वभाषा के रूप में देखना चाहते थे। भारत में हिंदी का जो भी स्थान है उसके पीछे टण्डन जी की अटूट निष्ठा और उनके परिश्रम का महत्त्वपूर्ण योगदान है। यदि हम टण्डन जी की हिंदी सेवाओं का प्रचार और प्रसार कर सकें तो यह महान् व्यक्ति के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

— 0 —

वैदिक शिक्षा दर्शन

ले०—मनुदेव 'बन्धु' एम० ए०
संस्कृत-हिंदी-वेद
वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

शिक्षा की परिभाषा हम वेद के शब्दों में इस प्रकार कर सकते हैं-"विद्ययाऽमृत-मश्नुते" "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् विद्या वह है जो हमें मुक्ति दिलती है, आत्मदर्शन कराती है। महर्षि दयानन्द "स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश" नामक ग्रन्थ में शिक्षा की परिभाषा करते हुए लिखते हैं - "जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा जितेन्द्रियतादि की बढती होवे और अविद्यादि दोष छूटें; उसको शिक्षा कहते हैं।" इसी प्रकार भगवान् कृष्ण ने भी गीता में "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति", "अध्यात्म विद्या विद्यानाम्" द्वारा इसी सिद्धांत को स्वीकारा है।

महर्षि दयानन्द ने प्राचीन भारतीय साहित्य का मन्थन करके लुप्तप्राय वैदिक-शिक्षा-प्रणाली का वास्तविक स्वरूप हमें दिखाया। महर्षि ने शिक्षा जगत् में मौलिक, व्यवहारोपयोगी वैदिक विचार दिये हैं। महर्षि भर्तृहरि के शब्दों में हम कह सकते हैं —

"विद्याविलासमनसो धृतिशीलशिक्षा
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा ।
संसार दुःखदलनेन सुभूषिता ये
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकारा ॥"

वे विद्याविलासी मानव धन्य हैं जिन्होंने अपना समग्र जीवन परोपकारमय बना रखा है।

वैदिक शिक्षा सोद्देश्य है। उसका उद्देश्य समाज के उत्थान में समर्पण की भावना को जन्म देना है, जिसके लिए छात्र को भावी जीवन में किसी उद्देश्य को चुनकर उसके लिए अपने को तैयार करना होता है। इसी के लिए यज्ञोपवीत का विधान किया गया है। ऋषि ने लिखा है - "प्रथम लडके का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा आचार्य-कुल में हो" (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)। दो बार यज्ञोपवीत से अभिप्राय बालक

की रुचि का परिज्ञान करना है। जो आचार्य बालक की रुचि पहिचान ले, वह उसे उसके वर्ण के अनुरूप यज्ञोपवीत दे देवे। यज्ञोपवीत उसके उस सामाजिक कर्त्तव्य का साकेतिक चिन्ह है, जिसकी पूर्ति के लिए वह अपने आपको तैयार कर रहा होता है। यह जन्म से न होकर रुचि, गुण, कर्म, तथा स्वभाव के अनुसार ही होता है। जिस दायित्व को निभाने के लिए शिक्षाकाल मे एक छात्र अपने आपको तैयार करता है, वे कर्त्तव्य निम्न प्रकार से हैं—१ अविद्या को दूर कर ज्ञान का प्रसार करना २ अन्याय को दूर कर न्याय तथा सुरक्षा प्रदान करना, ३ अभाव को दूर कर जीवनोपयोगी भौतिक पदार्थों की वृद्धि करना, ४ इन तीनो का सहयोग करना। इन्ही को क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कह दिया गया है। इसके विपरीत आज की शिक्षा का उद्देश्य येन-केन-प्रकारेण उदरपूर्ति मात्र ही है।

आचार्य और शिष्य का सम्बन्ध उसी प्रकार का हो, जिस प्रकार का सबध माता और पुत्र मे होता है। माता अपने शिशु को अपने गर्भ मे रखती है। आचार्य अपने शिष्य रूपी शिशु को अपने निकट (गर्भ) मे रखता है। वेद ने इसी विषय का प्रतिपादन सुस्पष्ट शब्दो मे किया है—

"आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिण कृणुते गर्भमन्त्र ।
त रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति त जात द्रष्टुमभिसयति देवा ।।"

—अथर्ववेद

वैदिक शिक्षा-दर्शन मे शिक्षा प्राप्ति प्रत्येक नागरिक का अपरिहार्य अधिकार है। इसमे ऊंच-नीच का भेद भाव नही है। शिक्षा का राष्ट्रीयकरण है। राजा का अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह अपनी सन्तान को शिक्षा से वचित करने वाले समर्थ नागरिक को दड दे तथा असमर्थ के बालको की शिक्षा की व्यवस्था करे। ऋषि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश के शिक्षा-विषय मे एक क्रातिकारी विचार देते हुए लिखा है—"राजा को योग्य है सब कन्या और लडको को उक्त समय तक ब्रह्मचर्य मे रखकर विद्वान् करना, जो कोई इस आज्ञा को न माने तो उसके माता-पिता को दड देना अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लडका व लडकी किसी के घर मे न रहने पावे, किंतु आचार्यकुल मे रहे। सब स्त्री पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को पढने का अधिकार है। जैसे लडके ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्णविद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवती, विदुषी अपने अनुकूल, प्रिय सदृश स्त्रियो के साथ विवाह करते हैं, वैसे ही कन्या कुमारी ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रो को पढकर पूर्णविद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होके पूर्ण युवावस्था मे अपने सदृश प्रिय विद्वान्, पूर्ण युवावस्था युक्त पुरुष को प्राप्त होवे। इसलिए स्त्रियो को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिए। इसमे राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि

पांचवें अथवा आठवें वर्ष के आगे कोई अपने लडके और लडकियों को घर मे न रख सकें, पाठशाला में अवश्य भेज दें, जो न भेजें तो वह दण्डनीय हों। जो कुलीन शुभ लक्षणयुक्त शूद्र हों तो उसको मन्त्र सहिता छोडकर सब शास्त्र पढावें। पाचवें व आठवें वर्ष से लडके लडकों की पाठशाला में और लड़किया लडकियो की पाठशाला मे आ जावें और नियमपूर्वक अध्ययन का आरम्भ करें।" इस प्रकार राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक शिक्षित हो।

उपर्युक्त शिक्षा संस्थान शात, एकात, सुस्थिर तथा सात्विक वातावरण मे ही होना चाहिए जिससे कि अध्येतृवर्ग निश्चिन्त हो कर अध्ययन कर सकें और अध्यापयितृ वर्ग दत्तचित्त होकर अध्यापन कर सकें। वेद मे इसका चित्रण कमनीय रूप मे मिलता है—

'उपह्वरे गिरीणा, सगसे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत॥" —यजुर्वेद

अर्थात् पर्वतो की उपत्यका तथा नदियो के सगम पर शिक्षा प्रदान करने से राष्ट्र को उत्तम सच्चरित्र विद्वानो की प्राप्ति होती है। नगरो के विलासितामय वातावरण से दूर प्रकृति के स्वच्छ वातावरण का उत्तम प्रभाव होता है, जो कि शिक्षाकाल मे मनुष्य के अन्त करण मे सात्विकभावो का सचार कर देता है, जहा अध्येताजन सासारिकता के दूषित प्रभाव से मुक्त हो कर अपने जीवन का निर्माण करने मे सफल हो सकते हैं। ऋषि दयानन्द ने लिखा है—"विद्या पढने का स्थान एकात देश मे होना चाहिए और वे लडके और लडकियो की पाठशाला दो कोष एक दूसरे से दूर होनी चाहिए। पाठशालाओ से एक योजन अर्थात् चार कोष दूर ग्राम व नगर रहें।" इसके विपरीत आज की सस्थायें नगरो के पास होने से उनके दूषित वातावरण से अछूती नही हैं। परिणामत आज का छात्र तोड-फोड, हडताल, आवारागर्दी एव विलासिता का शिकार हो रहा है। आधुनिक शिक्षा मासिक व्यय मे गृहस्थो से दो पग आगे है। इस कारण वर्तमान शिक्षा पद्धति राष्ट्रनिर्माण मे सहायक न होकर बाधक ही बन रही है।

इसके साथ ही सह-शिक्षा (Co-education) नही होनी चाहिए। ऋषि दयानन्द लिखते हैं—"जब सन्तान आठ वर्ष की हो तभी लडको को लडको की पाठशाला में और लडकियो को लडकियो की पाठशाला मे भेज दें।"

आज नियम का उल्लघन होने का परिणाम है कि छात्रो मे नित्यप्रति आचार-हीनता भयानक रूप मे तथा अतिशोचनीय रूप मे बढ रही है। विदेशो मे तो वहा के

शासकों के लिए यह एक गम्भीर समस्या बनी हुई है, क्योंकि यौवनावस्था मे एक दूसरे के प्रति स्वाभाविक आकर्षण होता है। मदान्ध यौवन के कारण हिताहित का विचार किये बिना किशोर किशोरी पतन के गहरे गर्त मे जा गिरते है। समाज की इस पनपती पौध की जडो को दीमक से बचाने के सदुद्देश्य से ही दयानन्द कहते हैं—"जो वहा अध्यापक और अध्यापिका पुरुष व भृत्य अनुचार होवे, कन्याओ की पाठशाला मे सब स्त्री और पुरुषो की पाठशाला मे सब पुरुष रहें। स्त्रियो की पाठशाला मे पाच वर्ष का लडका और पुरुषो की पाठशाला मे पाच वर्ष की लडकी भी न जाने पावे; अर्थात् जब वे ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी रहे तब तक स्त्री व पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकात सेवन, भाषण, विषयकथा, परसार क्रिडा, विषय का ध्यान और संग—इन आठ प्रकार के मैथुनो से अलग रहें और अध्यापक लोग इन बातो से बचावे, जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा से बलयुक्त हो के आनन्द नित्य बढा सके।"

परन्तु आज इसके विपरीत होने का यह परिणाम है कि गुरु और शिष्य का सम्बन्ध होकर इन पवित्र सस्थाओ मे यौन सम्बन्ध स्थापित हो जाते है। लेखक को विदित है कि कई अध्यापकों के अपनी शिष्याओं के साथ ही वैवाहिक सम्बन्ध हुए है। वैदिक-विचार धारा के अनुसार यह पहला प्रश्न है कि इन शिक्षण सस्थाओ मे अध्यापक कैसे होने चाहिए, उनकी योग्यता क्या हो, विशेष रूप से उनका आचरण पक्ष कैसा है? इसी सम्बन्ध मे वैदिक मत प्रस्तुत करते हुए स्वामी दयानन्द लिखते हैं—"जो अध्यापक पुरुष व स्त्री दुष्टाचारी हो उनसे शिक्षा न दिलावे, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हो वे ही पढने और शिक्षा देने योग्य है।"

आज के शिक्षको के जीवन मे मानवीय मर्यादाओ का अभाव होने से छात्रो का जीवन भी उच्छृंखल होता जा रहा है। आज अध्यापक की योग्यता केवल मात्र उपाधि विशेष रह गई है, जिसका परिणाम यह है कि आचारहीन गुरु के कारण छात्र भी आचरणहीनता की ओर प्रगति कर रहे हैं। यदि उपाधियो के साथ-साथ सस्थाओ मे उत्तमाचरण को भी महत्व दिया जावे तो छात्र सदाचार ग्रहण मे रुचि ले सकते हैं क्योंकि "आचारहीन न पुनन्ति वेदा" अर्थात् आचारहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नही कर सकते।

देश की पीढी के निर्माण का सूत्र बताते हुए ऋषि दयानन्द लिखते है—"उनके माता-पिता अपने सन्तानो से व सन्तान अपने माता-पिता से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र व्यवहार एक दूसरे से कर सकें, जिससे सासारिक चिन्ता से रहित हो कर केवल विद्या बढाने की चिन्ता रखें। जब भ्रमण करने जायें तो उनके

साथ अध्यापक रहे, जिससे किसी प्रकार की चेष्टा न कर सके और न आलस्य प्रमाद करें। जब तक गुरुकुल मे रहें, तब तक माता-पिता समान अध्यापको को समझें और अध्यापक अपने सन्तानो के समान शिष्य को समझें। इसलिये शुभ लक्षणयुक्त अध्यापक और विद्यार्थियो को होना चाहिए। अध्यापक लोग ऐसा यत्न किया करे जिससे विद्यार्थी लोग सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी, सभ्यता, जितेन्द्रियता, सुशीलतादि शुभगुणयुक्त शरीर और आत्मा का पूर्ण बल बढे, समग्र वेदादिशास्त्रो मे विद्वान् हो, सदा उनको कुचेष्टा छुडाने मे और विद्या पढाने मे चेष्टा किया करे। विद्यार्थी लोग सदा जितेन्द्रिय, शान्त, पढनेहारो मे प्रेमी विचारशील, परिश्रमी होकर ऐसा पुरुषार्थ करे जिससे पूर्ण विद्या पूर्ण आयु, परिपूर्ण धर्म और पुरुषार्थ करना आ जावे। जो विद्या पढने-पढाने के विघ्न हैं उनको छोड देवे, जैसे कुसग अर्थात् दुष्ट विषयी जनो का सग, दुष्ट व्यसन अर्थात् मद्यादि सेवन और वैश्य गमनादि, बाल्यावस्था मे विवाह अर्थात् पच्चीसवे वर्ष से पूर्व पुरुष और सोहलवे वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह हो जाना, पूर्ण ब्रह्मचर्य न बढने बढाने, परीक्षा देने व लेने मे आलस्य व कपट करना, सर्वोपरि विद्या का लाभ न समझना, ब्रह्मचर्य से बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य धन की वृद्धि न मानना आदि।"

छात्रो के जीवन मे धार्मिकता के सस्कार होने चाहिए। सस्कारो से उत्तम संस्कृति का निर्माण होता है। अत प्रतिदिन दोनो समय छात्रो को सन्ध्या और हवन अवश्य करना चाहिए, जिससे प्रतिदिन पडने वाले सस्कारो से उनका जीवन सुसंस्कृत होता जावे।

सक्षेप मे वैदिक शिक्षा-दर्शन एक सार्वभौम और सर्वजनीन शिक्षा-दर्शन है। यहा राजा और रक दोनो मे समानता है। आध्यात्मिकता और भौतिकता का सगम है। वैदिक शिक्षा-पद्धति के स्वरूप को पच सकार मे जाना जा सकता है, यथा—

> "समानता सरलता सामीप्य गुरुशिष्ययो।
> स्वाधीन सयमश्चैव सकारा पच सिद्धिदा॥"

शिक्षा मे इन पाच सकारो वाले गुणो का होना अत्यन्त अनिवार्य है। यदि आज का भारत उपर्युक्त वैदिक शिक्षा पद्धति स्वीकार करके उस पर चलना प्रारम्भ कर दे तो अवश्य ही ससार के समस्त देशो मे अग्रगण्य हो जावेगा।

— 0 —

भारत में विदेशी पेड़-पौधों की उपयोगिता

ले०—डा० विनोदचंद्र सिंहा
अध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास, सस्कृति तथा पुरातत्व विभाग।

पेड-पौधे स्वदेशी हो या विदेशी, उनकी उपयोगिता अनन्त है। इसीलिए भारत मे अति प्राचीन काल से वृक्षोपासना का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। हमारी धार्मिक, सामाजिक एव राष्ट्रीय मान्यताओं तथा परम्पराओ की पृष्ठ-भूमि मे पेड-पौधो का विशिष्ट स्थान है। इनका अस्तित्व हमारी भौतिक एवं पारमार्थिक साधना को बलवती बनाता है। जीवन मे त्याग, तपस्या, परोपकारिता और पावनता आदि गुणो की स्थापना काफी अशो मे पेड-पौधो के साहचर्य से हुई है। यदि हम यह कहे कि इस का ईश्वरत्ववृक्षों मे साकार हुआ है, तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। पेड-पौधों के अभाव हैं न सृष्टि मनोरम रहेगी, न काव्य का सृजन होगा और न ही मानव का अस्तित्व ही चिरन्तन बना रह सकेगा। दिनकर जी ने लिखा है—

पहली पक्ति लिखी विधि ने
जिस दिन कविता की,
उस दिन पहला वृक्ष स्वय
उत्पन्न हो गया।
प्रथम काव्य है वृक्ष
विश्व के पहले कवि का।

भारतीय सस्कृति की यह एक प्रमुख विशेषता रही है कि अच्छी बातों के आदान-प्रदान करने मे उसने कभी भी संकोच नही किया। विश्व की सभ्यता और सस्कृति का पाठ पढाते हुए, उसने विश्व से अच्छी बातो को ग्रहण करने का सफल प्रयास किया है। भारत मे पेड पौधो की अतुल सम्पदा थी, फिर भी बाहर के उपयोगी पेड पौधो को अपनाने मे उसने भरपूर उत्साह का प्रदर्शन किया। समय के साथ-साथ कुछ विदेशी वृक्ष तो इस धरती से इतना जुड गये, मानों वे यही उत्पन्न हुए हो।

पेड-पौधे सौन्दर्य की गाथा हैं। शोभाकर वृक्षो के द्वारा आज-कल अपने देश मे सौन्दर्य उत्पन्न करने की दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है। वृक्षारोपण के द्वारा, गांवो, नगरो, सार्वजनिक स्थलो और मार्गों को सुन्दर बनाया जा रहा है। शोभाकर फूलो वाले वृक्षो की सूची को यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो ज्ञात हो जायेगा कि इसमें कुछ ही पेड देशी हैं और अधिकाश विदेशी। इनमे गुलमोहर और गुल-ए-चीन अपने देश मे इतने लोकप्रिय हो गये हैं कि सम्भवत कम ही लोग यह जानते होंगे कि ये दोनो वृक्ष मूल रूप से विदेशी हैं।

मेडागास्कर द्वीप का गुलमोहर एक बडे आकार का खुली और छतरीनुमा फैली हुई शाखाओ वाला वृक्ष है। इसकी हल्की पतियापक्षियो के परो की तरह फैली हुई है।

इस वृक्ष की एक अन्य किस्म सफेद गुलमोहर भी भारत मे उगायी जाती है। इसे अरब लोग एबीसीनिया से भारत लाये थे। गुलेचीन मैक्सिको अथवा ग्वोटेमाला से भारत लाया गया। सजावट के लिए विदेशी वृक्षो मे अशोक, जैकेरेन्डा, स्वर्णचम्पा, टूलिप ट्री, जावाकैशिया, बर्मी गुलाबी कैशिया। रेन ट्री, बोतल ब्रश और स्पोटेड ग्लीरिसिडिया विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये वृक्ष विशेष रूप से छाया, शोभा तथा मार्गों को सुन्दर बनाने के लिए लगाये जाते हैं।

अशोक वृक्ष अपने देश मे काफी प्रचलित है। इसकी भाले जैसी नुकीली चिकनी और चमकदार पत्तियां बहुत सुन्दर होती हैं। अपनी चमकीली पत्तियो के कारण सडको के किनारे लगाये जाने के लिए यह वृक्ष बहुत अच्छा समझा जाता है। इसकी छाल से अच्छे रेशे निकलतेहैं। लचकदार लकडी, ड्रम, सिलेन्डर, पैंसिल और बक्स बनाने के काम मे लायी जाती है। शुभ अवसरो पर इसकी पत्तियो की वन्दनवार बनायी जाती है। अशोक वृक्ष का उत्पत्ति-स्थल श्रीलका माना जाता है। सजावट की दृष्टि से जैकेरेन्डा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। बाग, बगीचो, सार्वजनिक स्थानो तथा घरो मे बाड बनाने के लिए बहुत अच्छी झाड है। जैकेरेन्डा उत्तरी पश्चिमी अर्जेन्टाइना का देशज वृक्ष है।

शोभाकार वृक्षो मे स्वर्ण चम्पा का भी विशेष स्थान है। ये वृक्ष बडे तो नही होते किंतु वर्ष भर पत्तियो से लदे होने के कारण बडे आकर्षक लगते है। इसके सफेद फूल अत्यन्त सुगंधित होते हैं। इस वृक्ष को अधिकतर धार्मिक स्थलो के समीप उगाया जाता है। इसका दूधिया रस वात रोग मे उपयोगी पाया गया हैं। इसकी छाल ज्वर दूर करती है और घाव भरती है। भारत मे इस वृक्ष को जीवन वृक्ष के रूप मे आदर प्राप्त है।

पूर्वी अफ्रीका का टूलिप ट्री हैदराबाद, आंध्र प्रदेश, चडीगढ तथा नयी दिल्ली मे विशेष रूप से उगाया गया है। अपने कटोरी नुमा फूलो के कारण अग्रेजी मे इसे

फाउन्टेन-ट्री कहा जाता है इसके फूलो मे पानी भरा रहता है, जिसे दबाने से फव्वारे की तरह धार निकलती है। सडको के किनारे लगाने के लिए यह एक उपयोगी और छायादार वृक्ष है। अफ्रिका के शिकारी इसके फलो का काढ़ा बनाते हैं। इसकी लकडी सफेद और कोमल होती है। इस लिए कागज और घरेलू सामान बनाने के लिए उपयुक्त है।

जावा कैशिया भारत के अधिकाश राज्यों मे उगाया जाता है। चडीगढ मे सड़को के किनारे आज इसे विशेष रूप से देखा जा सकता है। जावा का यह वृक्ष मध्यम आकार का बडा सुन्दर होता है। पत्तिया गोलाकार होती है और वृक्षो से गहरी गुलाबी कलिया निकलती है। बर्मा का गुलाबी कैशिया भी मध्यम आकार का होता है। इसकी पत्तिया नुकीली और चमकदार होती हैं और फूल काफी सुन्दर होता है। बर्मा का यह वृक्ष विशेष रूप से बम्बई और मद्रास मे उगाया जाता है।

मध्य अमेरिका का रेन ट्री भारत के उष्ण प्रदेशो विशेषकर बगाँल मे पाया जाता है। यह अत्यन्त ही सुन्दर और सदाबहार वृक्ष है। इस वृक्ष के नीचे काफी नमी रहती है, इसीलिए इसे रेन ट्री अथवा हिंदी मे वर्षा वृक्ष के नाम से पुकारा जाता है। इसके हल्के गुलाबी फूल रेशमी गुच्छे से लगते है। इसकी फलिया का मीठा गूदा मवेशियो द्वारा खाया जाता है। सडको के किनारे लगाने के लिए यह बहुत अच्छा वृक्ष है। अपने फलो और कीमती लकडी के कारण इसकी बडी उपयोगिया है। बोतल ब्रश ट्री और ग्लीरिसिडिया भी शोभाकारी वृक्षो मे महत्वपूर्ण माना जाता है। बोतल ब्रश आस्ट्रेलिया से और ग्लीरिसिडिया दक्षिणी अमरीका से भारत लाया गया।

शोभाकर वृक्षो मे श्रीलका का काविल्टोफोरम, बर्मा का आकाशनीम और पूर्वी भूमध्यसागर का चिनार वृक्ष भी उल्लेखनीय है। पिल्टोफारम भारत मे बिहार, बगाल और पश्चिमी घाट पर सामान्यत पाया जाता है। यह वृक्ष जब अपने चमकीले फूलो से लद जाता है तो अत्यन्त मनोहारी लगता है। इसके फूल सुगधमय होते हैं। पार्कों, बगीचो और सडको के किनारे जाने के लिये यह अत्यन्त उपयोगी वृक्ष है। इसकी लकडी से अलमारी और सदूक बनते हैं। बर्मा का आकाश नीम सुन्दर सदाबहार वृक्ष है, जो ८० फीट तक ऊचा चला जाता है। इसके चादी से सफेद फूल रात मे मीठी सुगन्ध देते है। यह वृक्ष सम्पूर्ण भारत मे सजावट की दृष्टि से लगाया जाता है। इसकी लकडी, फर्नीचर तथा नक्काशी के काम के लिए उपयुक्त है। इसकी छाल से कार्क बनाया जाता है पूर्वी भूमध्य सागर का चिनार वृक्ष मुख्यत: काश्मीर और पंजाब में उगाया जाता है। इसकी लकडी से बक्स बनाये जाते है और ईधन के रूप मे भी इसका प्रयोग प्रचुरता से किया जाता है।

बाहर से आये उपयोगी वृक्षो मे काजू का वृक्ष, जाएन्ट बैम्बू, यूकिलिप्टस शहतूत का वृक्ष तथा इमली का पेड अत्यन्त महत्वपूर्ण है। काजू जिसे हम बडे चाव से खाते हैं, कम लोग जानते होगे कि यह वृक्ष दक्षिणी अमेरिका का है। बर्मा देशज जाएन्ट बैम्बू भी अत्यन्त उपयोगी वृक्ष है। इसकी लकडी इमारत, फर्नीचर, टोकरी, गिलास एव नाव का मस्तूल बनाने मे प्रयुक्त होती है। लघु उद्योग धन्धो मे इस वृक्ष की महत्ता का वर्णन आसानी से नही किया जा सकता। कागज उद्योग मे इसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। चीन का शहतूत-वृक्ष उत्तरी भारत में प्रचुरता से उगाया जाता है। शोभाकर वृक्षों के रूप मे अब यह पेड कम लगाया जाता है। इसकी लकडी नाव, फर्नीचर, खेलसामग्री तथा कृषि के औजार बनाने के काम मे लायी जाती है। इसकी शाखाओ से मजबूत रेशा निकलता है, जिससे टोकरी बनायी जाती है। शहतूत के वृक्ष की सबसे बडी महत्ता रेशम उद्योग के लिए है। इमली अफ्रीका का देशज वृक्ष माना जाता है, किन्तु एशिया और अमेरिका मे इसे सर्वत्र उगाया जाता है। भारत मे इस वृक्ष की उत्तम किस्मे उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग और अवध में देखी जाती है। यह एक सदाबहार वृक्ष है। इसकी नुकीली लम्बी फली खाने के काम मे आती है। इसकी लकडी फर्नीचर, मूसल तथा नक्काशी की चीजें बनाने के काम मे लायी जाती है। आस्ट्रेलिया का यूकिलिप्टस वृक्ष वर्तमान् समय मे अपने देश मे अत्यन्त ही लोकप्रिय हो गया है। इसे अब भारतवर्ष के अधिकाश भागो मे उगाया जाता है। शोभाकर वृक्ष के रूप मे इसकी बडी भारी महत्ता है। वन पुन रोपन के लिये भी यह वृक्ष काफी उपयोगी है। इसकी लकडी से विविध प्रकार के सामान बनाये जाते है। इसके स्लीपर से लकडी की फर्श बनायी जाती है। वस्त्र उद्योग मे इस लकडी का बडा महत्व है। इस वृक्ष से एक तेल निकाला जाता है जो औषधि के रूप मे प्रयुक्त होता है यूकिलिप्टस की छाल से टेनिन निकलता है।

टमाटर, सब्जी और फल दोनो ही रूपो मे आज बडे चाव से खाया जाता है। इसमे कुछ औषधीय गुण भी प्राप्त हुए है। यह पौधा दक्षिणी अमेरिका से भारत लाया गया। पपीता जो एक मीठा और स्वादिष्ट फल है मूल रूप से वेस्टइडीज का है। अपच तथा नेत्र रोग के लिए यह बडा उपयोगी माना गया है। वेस्टइडीज मे इसकी पत्ती से कपडों को साफ किया जाता है। रायल-पाम भी वेस्टइडीज का देशज वृक्ष है। यह पचास फीट तक ऊचा उठता है। सडक के दोनो ओर लगाने के लिए बडा ही उपयोगी वृक्ष है। इसके फल खाये जाते है तथा पत्तियो से चटाई बनाई जाती है। नारियल के वृक्ष के विषय मे बडा विवाद है, किन्तु अधिकाश विद्वानो की राय मे इसकी उत्पत्ति दक्षिणी या मध्य-अमेरिका मे हुयी। सैकडो वर्षों से इसे भारत मे सफलता से उगाया जा रहा है। भारत के तटीय प्रदेशो मे इस वृक्ष की लम्बी कतारे देखी जा सकती हैं। यह वृक्ष अत्यन्त ही उपयोगी है। इसका फल बडे चाव से खाया जाता है

और पानी भी बडा स्वादिष्ट होता है। इससे उपयोगी तेल भी निकाला जाता है। इसके रेशो से नाना प्रकार की वस्तुएं तैयार की जाती हैं। शोभाकर वृक्षो मे नारियल का भी विशेष स्थान है।

भारतीय मसालों मे मगरोल अथवा कलौंजी का नाम सभी ने सुना होगा। इसका आदि देश दक्षिणी–योरुप मे है। मगरौल का प्रयोग सब्जी और आचार मे प्रचुरता से किया जाता है। इसका तेल भी औषधीय दृष्टि से बड़ा उपयोगी है। बदहजमी, दस्त, भूख न लगना तथा बुखार में मगरैल का प्रयोग किया जाता है। यह कफ-नाशक है तथा दूध बढाने के लिए भी उपयोगी है।

सुपाडी जो भारत मे इतनी प्रचलित है, इसका आदि देश मलाया है पान के साथ तो सुपाडी का सम्बन्ध सबको ज्ञात ही है। टानिक की दृष्टि से भी इसका बडा महत्व है। आयुर्वेद मे सुपाड़ी-पाक एक उत्तम टानिक है। सुपाड़ी का प्रयोग शुभ कामों मे भी किया जाता है। आलू और चावल जो अपने देश मे अत्यन्त ही प्रचलित खाद्य है, मूलरूप से विदेशी उत्पति के हैं। आलू दक्षिणी अमेरिका से और चावल चीन से आया चावल की उत्पति के विषय मे विद्वानो मे मतभेद हैं। विद्वान् डी कैनडोल के अनुसार चावल प्रथम रूप से चीन मे ही बोया गया। वे भारत और आस्ट्रेलिया को भी चावल के आदि देश के रूप मे स्वीकार करते हैं।

तम्बाकू जो आज काफी प्रचलित हो गया है, उसकी पचास से अधिक किस्मे हैं। इनमें दो को छोड कर शेष सभी का जन्मस्थान अमेरिका माना जाता है। हमारे देश मे तम्बाकू की दो जो प्रमुख किस्मे लगाई जाती हैं, वेदो नो ही अमेरिकन हैं। १६०५ ई० मे सर्वप्रथम पुर्तगालियो ने तम्बाकू के पौधे का प्रचार भारत मे किया। तम्बाकू के विविध उपयोग हैं। इसकी गणना नशीली वस्तुओ मे तो होती ही है, किंतु इसका औषधि-महत्व भी कम नही है। नशवार के रूप मे इसका प्रयोग बहुलता से किया जाता है। तम्बाकू से दात का मजन भी बनाया जाता है। सिगरेट और बीड़ी उद्योग का तो यह आधार ही है।

पेड पौधो की महती उपयोगिता को देखते हुए ही स्वर्गीय पं० जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि प्रत्येक उगता वृक्ष प्रगतिशील राष्ट्र का प्रतीक है। ऋग्वेद के एक मत्र मे "वनिजो मवन्तु शन्नो" का स्वर मुखरित हुआ है।

(आकाशवाणी नजीबाबाद के सौजन्य से)

— 0 —

ग्रन्थ-परिचय

ग्रथ का नाम	:	सूर-साहित्य-दर्शन
सम्पादक का नाम	.	सम्पादक-मडल (सात सदस्यो का)
प्रकाशक का नाम	:	विदर्भ हिंदी साहित्य सम्मेलन नागपुर
पृष्ठ सख्या	:	१८५

प्रस्तुत सकलन मे सूर-साहित्य के विभिन्न पक्षो पर प्रकाश डाला गया है। इसमे पचीस विद्वानो के लेख हैं तथा अत मे एक कविता है। लेखो के शीर्षक इस प्रकार हैं —

१. सूरदास—ले० सीताराम चतुर्वेदी
२. सूर-पदावली की गेयता—ले० डा० कमलाकांत पाठक
३ सूर की गोपिया—ले० डा० इद्रपालसिंह 'इद्र'
४. सूर का वात्सल्य-वर्णन—ले० श्री लखनलाल मुराई 'किशोर'
५. सूरकाव्य मे वात्सल्यरस—प्रा० जगजीवन प्रसाद दुबे
६. सूरसागर मे संयोग पक्ष—प्रा० साधना गुप्ता
७. सूर की भक्ति का स्वरूप—डा० रामकुमार सिंह
८ कृष्णकाव्य परंपरा और सूरदास—डा० नत्थूलाल गुप्त
९. सूरदास और मधुरा भक्ति—प्रा० माणिक केशव बैतुले
१०. सूर की भक्तिभावना—प्रा० देविदास सरोदे
११. सूर की राधा—श्री हीरालाल जायस्वाल 'हीरा'
१२. सूर-सुर तुलसी शशी—प्रा० सुचेता वेलणकर
१३. सूर-दर्शन—प्रा० कुमुदिनी लाल
१४ सूर-दर्शन—श्री जनार्दन पाण्डेय
१५. सूर्यसम ज्योतिपुज—डा० मदनमोहन शर्मा
१६. सबके सूर—प्रा० तारा बागडदेव
१७. सूरदास—डा० घनश्याम व्यास
१८. पुष्पदंत अपभ्रंश—डा० कुसुम पटोरिया
महापुराण तथा सूरसागर

१९ सूर-सुधा-माधुरी की अनुभूति—ले० वैद्य प० गुलराज शर्मा मिश्र
२० भक्त सूर का व्यक्तित्व—ले० डा० रामचन्द्र मिश्र
२१. सूरदास : जीवन दर्शन—सकलन
२२. सूर के कृष्ण पारपरिक विकास—ले० आचार्य विनयमोहन शर्मा
२३. महान् शब्द-शिल्पी सूर—ले० शैलेन्द्र कुमार
२४. सूर की साहित्यिक मान्यताएं—ले० डा० अपनदप्रकाश दीक्षित
२५. अन्न चक्षु भक्त शिरोमणि 'श्रीसूर'—ले० पं० शिवकरण शर्मा छंगाणी

अन्त मे एक कविता है जिसका शीर्षक है '**कैसे अभिनन्दन करूं तुम्हारा सूरदास**' तथा जिसके रचयिता है राष्ट्रीय कवि सोहनलाल जी द्विवेदी। कविता इस प्रकार है—

कैसे अभिनन्दन करू तुम्हारा सूरदास
ऐसा लगता ज्यो वेदव्यास
ले नई लेखनी बैठे फिर पावन इतिहास
लिख सके जो न सस्कृत भाषा मे
इस आशा मे,
पा सके जो न वे ज्ञान कर्म की चर्चा मे
पा जायेंगे वह तत्व, भक्ति की अर्चा मे,
अधे वे जो कहते हमको अधे
हमको तो अब तक मिला एक भी नही
नयनवाला वह कवि
जो अकित कर सकता वह छवि
जो झकृत है उन गीतो मे,
जो लिखे प्रवाहित हो तुमने सगीतो में
कैसे अभिनन्दन करू तुम्हारा सूरदास
हे नयनहीन ! यह देख तुम्हारी भावसृष्टि
ये नयन मचलते हो जाने को हीनदृष्टि
जिससे ये देख सके जीवन के सूक्ष्म तत्व
पी सके कि जिनसे हम कृष्णामृत
गीतामृत
दुह दुह शतशत श्रुतियों की धेनु
वेणु का सुन वादन
गोदोहन।

कैसे अभिनदन करू तुम्हारा सूरदास
वे नयन नही
जिनकी उपमा मृगनयनो से है की जाती
वे नयन नही
जिनकी उपमा अजनमीनो से है की जाती,
ये चर्मचक्षु
इनकी है क्षुद्र परिधि सीमा,
ये पार नही कर सकते है रजनी सीमा
कैसे अभिनदन करू तुम्हारा सूरदास
तुम हो रहस्य, तुम हो घटना
नर नारी तो थक जाते है
भरते भरते नन्ही सागर
हम तो अपनी उर की द्रोणी मे भर लाए
अथाह सागर
जिसकी सहस्र शत लहरो की हिलकोरो मे
कितने ही जीवनपोत बधे से डोरो मे
पा जाते हैं जग जलधिक्
खिल रहे नही सुखशान्ति मुक्ति के
स्वर्ण फूल ।

प्रस्तुत सकलन मे सूर-साहित्य पर आलोचनात्मक दृष्टिकोणो से लिखे गये ऐसे लेखो का सग्रह किया गया है जो गम्भीर तथा उच्चकोटि के हैं। प्रत्येक सूर-साहित्य के अध्येता को यह ग्रन्थ अवश्य पढना चाहिये। एम० ए० मे जिन छात्रो ने "विशेष अध्ययन" के अन्तर्गत "सूरदास" को लिया है उनके लिए तो यह ग्रन्थ परमोपयोगी है।

इसके सम्पादक मडल में निम्नाकित सदस्य हैं —

१. श्री रामगोपाल माहेश्वरी
२ डा० कमलाकान्त पाठक
३. श्री शिवचन्द्र नागर
४. श्री रामेश्वर बजाज
५. प्रा० बालकृष्ण पाण्डेय
६. डा० रामनारायण सोनी
७ श्री शिवनारायण द्विवेदी

तथा इनका प्राप्ति स्थान निम्नलिखित है —

पं० शिवनारायण द्विवेदी, प्रधानमंत्री,
विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
उत्तर अंबाझरी मार्ग नागपुर—१२

ग्रन्थ का सम्पादन बड़ी कुशलता से किया गया है। इसका विषय-चयन इतना सुन्दर है जो कदाचित् ही किसी संग्रह मे प्राप्त हो सकेगा। सूर-पचासती के संदर्भ मे उक्त सकलन की उपयोगिता निर्विवाद है।

(सम्पादक)

— 0 —

गुरुकुल सुधार समिति–विवरण

आज दिनांक १९-११-८३ को कुलपति निवास मे गुरुकुल सुधार समिति मे निम्न लिखित सदस्य उपस्थित हुए :—

१–श्री सत्यव्रत जी सिद्धातालकार	अध्यक्ष
१–श्री बलभद्र कुमार हूजा कुलपति	सदस्य
३–श्री आचार्य प्रियव्रत जी	सदस्य
४–श्रीमती दमयन्ती आचार्य कन्या गुरुकुल	,,
५–श्री सरदारीलाल वर्मा	,,
६–श्री कर्नल ओ-पी-राजपाल	,,
७-श्री देशराज स० मुख्याधिष्ठाता	संयोजक

विशेष आमन्त्रित

८–श्री आचार्य रामप्रसाद जी

९–श्री बृजमोहन थापर वित्ताधिकारी

१०–श्री दीनानाथ मुख्याध्यापक

बैठक मे निम्न विचार किये गये :—

(१) निश्चय किया गया कि कुलपति ऐसा व्यक्ति चुना जाय जो आयसिद्धन्ति का हो साथ ही कुलपति तथा मुख्याधिष्ठाता एक ही व्यक्ति होना चाहिये।

(२) आचार्य एव उपकुलपति भी एक ही व्यक्ति होना चाहिये। आचार्य का कार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की शिक्षा की देख-रेख करना तथा आर्य जनता से सम्बन्ध स्थापित करना है। मुख्याध्यापक का कार्य गुरुकुल परिसर मे रहकर २४ घटे ब्रह्मचारियों की देख-रेख करना है साथ ही अध्यापक भी अधिक से अधिक समय ब्रह्मचारियों से सम्पर्क बनाये रखें। अत. यह आवश्यक है कि सभी अध्यापको की निवास व्यवस्था परिसर में हो।

यह भी विचार व्यक्त किया गया कि जितना अधिक से अधिक हो सके कुलपति तथा आचार्य को गुरुकुल मे ही रहना चाहिये यथा समय कुलाधिपति परिसर मे पधारें।

श्री आचार्य प्रियव्रत तथा आचार्या दमयन्ती ने आचार्य एव उपकुलपति को गुरुकुल परिसर मे रहना चाहिये, ऐसा सुझाव दिया।

(३) समिति का एक मत था कि वर्तमान प्रबन्ध व्यवस्था असन्तोषजनक है। असंतोष व्यवस्था का मुख्य कारण धनाभाव है। पिछले दो वर्षों से गुरुकुल फार्मेसी से २५,०००/= प्रतिमास प्राप्त न होने के कारण ऐसी स्थिति पैदा हो गई है। जब तक अध्यापकगण तथा कर्मचारियो को नियत समय पर वेतन प्राप्त नही होगा, असतोष बना रहेगा। अत प्रयत्न करना चाहिये कि फार्मेसी से देय निश्चित राशि यथा समय उपलब्ध हो।

(४) गुरुकुल कागडी विद्यालय का शिक्षास्तर ऐसा होना चाहिये कि परिसर मे रहने वाले कर्मचारी तथा अन्य व्यक्ति अपने बच्चो को स्वत यहा प्रविष्ट करे। हमे छात्रो को वेदानुकुल शिक्षा देने के अतिरिक्त उच्च सरकारी, प्रशासनिक तथा सैनिक सेवाओ के लिए भी तैयार करना चाहिये। इसके लिए उचित प्रबन्ध व्यवस्था की जाय, ताकि योग्य विद्यार्थी इससे लाभ उठाकर इन सेवाओ की प्रतियोगिताओं मे सम्मिलित हो सके। इस हेतु विश्वविद्यालय के प्राध्यापको से अपेक्षित है कि वे विद्यालय के छात्रों में संस्कृत तथा अंग्रेजी सम्भाषण वैदिक सस्कृति एव अन्य विषयो मे अभ्यस्त करने के लिए अपना समय दें।

इस प्रसंग मे श्री चन्द्रशेखर त्रिवेदी प्राध्यापक मनोविज्ञान तथा डा० त्रिलोकचंद्र प्राध्यापक दर्शन विभाग द्वारा जो सेवा विद्यालय के छात्रों की जा रही है, इसकी प्रशसा की गई।

(५) यह भी निश्चय हुआ कि गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय तथा विद्यालय के आध्यापको के लिए श्री आचार्य जी रेफ्रेशन कोर्स की व्यवस्था करे, जिससे अध्यापकों की मनोभावना प्रखर हो।

(६) यह भी निश्चय हुआ कि विद्यालय तथा आश्रम के अध्यापको तथा अधिष्ठाताओं का वेतनक्रम उच्च किया जाय। जिससे योग्य व्यक्ति उपलब्ध हो और वह पूर्ण निष्ठा से कार्य कर सकें।

अध्यापको तथा छात्रों की वेशभूषा नियत की जाए साथ ही छात्रो की वेशभूषा की स्वच्छता की ओर यथेष्ट ध्यान दिया जाय।

(७) निश्चय हुआ कि विद्यालय मे छात्रो की क्रीडा सामग्री की उचित व्यवस्था की जाय तथा क्रीडा के समय मे सम्बधित अधिष्ठाता तथा अध्यापक दोनो उपस्थित रहे।

(८) विद्यालय पुस्तकालय का स्तर उच्च किया जाय। जिसके लिए विश्वविद्यालय पुस्तकालय से सहयोग प्राप्त किया जाये।

(९) विद्यालय मे संगीत अध्यापक की व्यवस्था कर सामूहिक तथा वैयक्तिक संगीत छात्रो को सिखाया जाय।

(१०) गुरुकुल कागड़ी का प्रोजक्टर को गुप्ता इलैक्ट्रिक कम्पनी हरिद्वार से प्राप्त किया जाय।

(११) आश्रम मे पखो तथा प्रकाश की उचित व्यवस्था की जाय। आश्रम के अन्दर तथा बाहर फलश शौचालयो की व्यवस्था की जाय।

विद्यालय के भोजनालय मे छात्रो की भोजन व्यवस्था हेतु (कन्या गुरुकुल देहरादून जैसा) डाइनिंग हाल बनवाया जाय। छात्र अपना भोजन स्वय प्राप्त करे तथा अपने वर्तन स्वय साफ करे।

ईंधन की बचत हेतु गोबर गैस प्लाट को सुव्यवस्थित किया जाय।

(१२) विश्वविद्यालय मे बी-एड श्रेणियो प्रारम्भ होने पर विद्यालय मे बी-एड का प्रशिक्षण स्थल बनाया जाय तथा इस हेतु उचित ट्रेनिंग ऐड प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय।

समिति को बतलाया गया कि जामियामिलिया को विद्यालय चलाने हेतु भारत सरकार से ग्रान्ट मिलती है। निश्चय हुआ कि पूरी जानकारी प्राप्त करने हेतु कुलसचिव, मुख्याध्यापक तथा आचार्या दमयन्ती शीघ्र ही जामियामिलिया तथा दयाल बाग सस्थान जाये और अपनी सस्तुति प्रस्तुत करे ताकि गुरुकुल विद्यालय के लिए भी अदनुसार मांग की जा सके।

(१३ चूँकि फार्मेसी से २ वर्ष से विद्यालय को आर्थिक सहायता नही मिली। इसलिये निश्चय हुआ कि वर्तमान अर्थ संकट के निदान हेतु प्राथमिक कक्षाओ के छात्रों से ३०/- प्रतिमास तथा माध्यमिक कक्षाओ के छात्रो से ६०/- प्रतिमास शिक्षा

शुल्क प्रथम जनवरी १९८४ से लेना आरम्भ किया जाए। साथ ही प्रत्येक छात्र से ५/- विद्युत तथा २/- चिकित्सा शुल्क भी प्रतिमास लिया जाए।

(१४) उपर्युक्त अनुसार आय-व्यय का ब्यौरा बनाकर आगामी अर्थसमिति में प्रस्तुत किया जाए।

(१५) कर्नल ओ-पी-राजपाल का उनके सहयोग के लिए धन्यवाद किया गया तथा उनसे निवेदन किया गया कि वह यदा-कदा गुरुकुल पधारें तथा विद्यालय को उन्नत करने के विषय में भी अपने सुझावों से लाभान्वित करते रहें।

(कैप्टन देशराज)
संयोजक सुधारसमिति
एवं सहायक मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

— 0 —

आभार-प्रकाश

प्रह्लाद-पत्रिका के इस अंक मे विद्वानो का जो सहयोग प्राप्त हुआ है उसके लिए पत्रिका उनके प्रति आभार प्रकट करती है। बाहर के विद्वानो मे डा० भवानी लाल भारतीय, प० वीरसेन जी वेदश्रमी, डा० श्रीमती अजुलता गहलोत के प्रति पत्रिका विशेष रूप से आभारी हैं। महात्मा मुशीराम जी का (स्वामी श्रद्धानन्द जी) "स्वाध्याय तथा ब्रह्मचर्य" विषयक-लेख आज के सन्दर्भ मे भी उतना ही उपयोगी है जितना पहले था इसीलिए इस अक मे उसे स्थान दिया गया है। 'गुरुकुलीय आचरण' अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है और इस पर जो लेख माननीय कुलपति जी ने लिखा था भी परसारित करना आवश्यक समझा गया। उनके प्रति आभार प्रकट करना आवश्यक है।

इस अक के प्रणयन मे डा० विनोदचन्द्र सिन्हा, डा० भगवानदेव पाण्डेय तथा श्री मनुदेव 'बन्धु' ने भी लेख लिखकर सक्रिय सहयोग प्रदान किया है अस्तु वे भी धन्यवाद के पात्र है।

यह पत्रिका प्रधान सरक्षक माननीय बलभद्रकुमार जी हूजा कुलपति, सरक्षक श्री रामप्रसाद जी वेदालकार-उपकुलपति एव आचार्य, व्यवस्थापक-डा० जबरसिंह जी सेंगर, व्यवस्थापक-कुलसचिव एवं वित्त अधिकारी-श्री ब्रजमोहन जी थापर के प्रति भी आभार व्यक्त करती है।

गत अंक किन्ही कारणो से विलम्ब से प्रकाशित हुआ था परन्तु यह अक समय से प्रकाशित हो रहा है। आशा है आगे भी ऐसा ही होगा।

—सम्पादक